और जिन्होंने द्वादशांग श्रुतज्ञानके पारको पा लिया है उन ध्यानी कल्याण देनेवाले मुनियोंको अपने चित्तमें चितारकर बार बार नमस्कार करता हूं। जिनको बड़ी बड़ी आकाशगामिनी आदि ऋद्धियां प्राप्त हो गई हैं, जो गाम्भीर्य धैर्य आदि असंख्य गुणोंके धारक हैं, जिनके ज्ञानकी महिमा अपरंपार है ऐसे श्रीगुरुओंके चरणों का मैं बार बार चिंतवन करता हूं। जिस प्रकार पूर्व आचार्य श्रीजिनसेन प्रभृतिने पुराण ग्रंथोंका प्रणयन किया है उसी प्रकार मैं भी श्रीविमलनाथ भगवानके पुराणका वर्णन करना चाहता हूं परन्तु कहां तो अगाध समुद्रके समान निर्मल बुद्धिके धारक वे आचार्य और कहां तुच्छ बुद्धिका धारक मैं, इसलिए यह काम अति कठिन है तथापि जिस प्रकार जहां सूर्यका प्रकाश नहीं पहुंचता वहां दीपक अपना प्रकाश फैला ही देता है उसी प्रकार मैं अपनी छोटी बुद्धिसे इस पुराणके संक्षिप्तार्थको कहूंगा। जिसप्रकार प्रशंसाके योग्य सज्जनोंके कल्याणकी इच्छा मैं करता हूं उसी प्रकार जिसके डरसे कवितामें अशुद्धि नहीं आने पाती उस दुर्जनके हितकी भी मैं कामना करता हूं। अथवा जिस प्रकार सुगंधित पुष्पकी सुगंध, हवासे अपने आप दशों दिशाओंमें फैल जाती है उसी प्रकार गुणवती कविता भी अपने आप सिद्ध हो जाती है।

इस पुराणमें बहुतसे भव्य जीवोंकी कथायें हैं, धर्म नामक बलभद्र और स्वयंभू नामक नारायण और प्रतिनारायणका चरित भी लिखा गया है इसलिये यह समुद्रके समान गंभीर है।

कथाका प्रारंभ। श्रेणिक राजाका चरित्र

इस असंख्य द्वीप और समुद्रोंसे विराजित इस मध्यलोकमें यह जंबूद्वीप है। इसमें हिमवन् आदि छह कुलाचल और गंगा सिंधु आदि नदी, पद्म आदि ह्रद और विद्याधरोंके निवासस्थान विजयार्धपर्वत आदि अनेक स्थान हैं। उसके ठीक मध्यभागमें सुमेरु पर्वत है और उसकी दक्षिण दिशामें भरतक्षेत्र है। उसके मध्यभागमें मगधदेश है और राजगृह नामका परम पवित्र नगर है। उस रमणीक नगरके राजा उपश्रेणिक थे जो कि अपने

गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध यशस्वी थ। उनकी पट्टरानीका नाम इद्राणी था। इन दोनोंके अनेक दिन बाद
एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम श्रेणिक रक्खा गया। यह श्रेणिक अतिरूपवान् राजाओंके समस्त लक्षणों
से भूषित और अतिशय बुद्धिमान था। राजाके अन्य पांच सौ और भी पुत्र थे जिनके साथ यह नाना तरहके
भोग भोगता हुआ सुखसे राज्य करता था। परंतु चंद्रपुरका राजा सोमशर्मा इसकी आज्ञाको नहीं मानता था
इसलिये एक पत्र लिखकर मतिसागर नामके दूतको उसके पास भेजा। दूतने सभामें जाकर सोमशर्माको वह
पत्र दिया। उसमें लिखा था कि--"मेरी (उपश्रेणिककी) आज्ञाको समस्त सामंत राजा महाराजा मानते हैं,
परन्तु एक तुम ही ऐसे हो, जो अपने घमंडमें आकर नहीं गिनते इसलिये तुम्हें यदि राज्य
करनेकी इच्छा है, तो यहां आकर मिलो।" पत्रका समाचार पढ़कर सोमशर्माने उस दूतको तो
अपना सद्भाव जतलाकर वापस कर दिया परंतु मनमें उसने राजाके मारनेके लिये एक कपटकी बात सोची
और उसके अनुसार उसने एक मायामयी घोड़ा विद्यासे बनाकर अनेक प्रकारकी बहुमूल्य भेंटके साथ उपश्रेणिक
के पास भेजा। घोडेको देखकर राजा उपश्रेणिकका मन ललचा गया और परीक्षाके लिये उसपर चढकर वनकी
तरफ चल दिया। घोडा तो बनावटी था ही, वह राजाको लेकर बहुत दूर निकल गया और एक गड्ढेमें उसे
पटककर लापता हो गया। श्रेणिक आदि समस्त पुत्र पिताकी खोजमें निकले परंतु जब कहीं भी राजाको न पाया तो वे
घर लौट आये। राजाके न मिलनेसे रानियोंको बड़ा दुःख हुआ और वे उनके गुणोंका स्मरण कर फूट फूट रोने
लगीं। इस तरह इधर तो शोक मनाया जा रहा था और उधर उपश्रेणिक दुर्गंधित गढेमें पड़े पड़े पंचपरमेष्ठी
का नाम जप रहे थें। उसी जगह वैवच्छ्वास नामकी भीलोंकी एक पली थी, वहांका स्वामी क्षत्रिय राजा यमदंड
था। उसकी रानीका नाम विद्युन्माला था और उनके तिलका नामकी पुत्री थी। वह उस समय वहां क्रीडाके
लिये आया था। उसने राजा उपश्रेणिककी वह शोचनीय अवस्था देख बड़ा खेद किया और उनसे कुल समा-

चार पूछे। उपश्रेणिकने अपनी सारी कथा सुना दी और उसका वृत्तांत पूछा। उत्तरमें भिल्लराजने कहा कि---मैं एक राज्यभ्रष्ट क्षत्रिय हूं, पास ही मेरा वासस्थान है। आप मेरे घर पधारिये और इस कष्टको दूर कीजिये। यमदंडकी बातके उत्तरमें उपश्रेणिकने कहा कि---आपके घर आचार आदिकी मर्यादा नहीं है अतएव मैं भोजन नहीं कर सकता। यह सुनकर यमदंडने कहा कि---राजन्! यदि यह बात है तो मेरी पुत्री समस्त गुणोंसे युक्त तिलकावती नामकी श्रावकोचित भोजन बनानेमें चतुर है वह आपकी उचित सुश्रूषा कर देगी। उपश्रेणिक इस बातसे सहमत हो गये और तिलकावतीके रूपको देखकर मोहित हो उसके पितासे उसको मांगा। यह सुनकर यमदंडने कहा कि---"आपके सैकडों रानियां एकसे एक सुंदर हैं ऐसी अवस्थामें मेरी पुत्रीको सुख होना कठिन है। पुत्रोत्पत्ति भी शायद होगी वा नहीं और हो भी जायगी तो उसका जीवन दूसरोंकी सेवामें ही जायगा इसलिये आप मेरी पुत्रीसे उत्पन्न पुत्रको राज्य देना स्वीकार करें तब तो मैं आपको यह कन्या दे सकता हूं अन्यथा नहीं।" महाराज कामांध थे, उन्होंने यमदंडकी उक्त बात स्वीकार कर ली और तिलकावतीको विवाहकर सजधजके साथ राजगृह नगरको लौट आये। खोये हुए महाराजको पाकर समस्त सामन्त और कुटुंबियोंने हर्ष मनाया एवं वे भी सुखसे रहने लगे।

कालक्रमसे तिलकावतीके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम चिलाती रक्खा गया। जिस समय वह युवा हो गया तो उपश्रेणिकको चिंताने आ घेरा। वह सोचने लगा कि राज्यका अधिकारी तो श्रेणिक है परंतु वर मैंने चिलातीको दे रक्खा है, ऐसी अवस्थामें युवराज कौन बनाया जाय? महाराजने एक निमित्तज्ञानी अर्थात् ज्योतिषीको बुलाया और उससे पूछा कि मेरे इन पुत्रोंमें से कौन राजा होगा? यह सुन ज्योतिषीने लग्नादि देखकर पांच निमित्त बतलाये और कहा कि आप अपने सब पुत्रोंको चीनीका भरा एक एक घड़ा घर लै जानेके लिये दीजिये। जो उसे अपने सिरपर न रख दूसरेसे लिवा ले जाय वही राजा होगा। दूसरे जो पुत्र

ओसके जलसे घड़ा भर लावे वही राज्य भोगेगा। तीसरे आप सब पुत्रोंको एक पंक्तिमें बिठालकर खीर आदि मिष्टान्नका भोजन कराइये और बीचमें ही कुत्तोंको उनपर छोड़ दीजिये, जो पुत्र उस उपद्रवके समय भी बिना किसी विघ्न बाधाके खाता रहे उसे ही भावी राजा समझिये। चौथे—नगरमें आग लग जानेपर जो छत्र चमर और सिंहासनको लेकर भागे वही राजसुख भोगेगा, और पांचवें—खाजे आदि पकान्नसे भरे पिटारे और जलसे पूर्ण घड़ोंका मुंह कपड़ेसे बंधवा दीजिये और उन्हें आप हरएक पुत्रको दे दीजिये और बिना उघाड़े खानेके लिये कहिये, जो पुत्र यह कार्य कर दे उसे ही राज्यका अधिकारी समझें। ज्योतिषीके कहे अनुसार इन परीक्षाओंमें पुत्र श्रेणिक उत्तीर्ण हो गया। यह देख उपश्रेणिक अति चिंतित हो सोचने लगा—आह! मैंने पुत्र चिलातीको राज्य देना पहिले कबूल किया है और लक्षणोंसे श्रेणिक राजा होता दीखता है ऐसी अवस्थामें क्या किया जाय? यदि चिलाती पुत्रको राज्य नहीं देता तो मेरा वचन मिथ्या सिद्ध होता है, जब वचन ही चले गये तो रह क्या गया? जिसके वचन मिथ्या हो जाते हैं उसकी पुण्यादि शुभ क्रियायें भी नष्ट हो जाती हैं। राजाकी इस चिंताको सुमति मंत्री जान गया। उसने कहा कि—महाराज! आपके घोड़े हाथी सुभट आदि सामग्री है। सुंदर २ स्त्रियां हैं, सब देशोंके स्वामियोंपर आज्ञा चलती है ऐसी अवस्थामें आपका चित्त चिंतित क्यों रहता है। उत्तरमें उपश्रेणिकने कहा कि—मैंने पहले चिलाती पुत्रको राज्य देना स्वीकार किया है और निमित्तोंसे श्रेणिक होता दीखता है यही मेरी चिंताका विषय है। राजाकी चिंता जानकर मंत्रीने कहा आप कुछ सोच मत कीजिये मैं बहुत शीघ्र श्रेणिकको देशसे निकाल दूंगा।

इस प्रकार मंत्री राजाको सुस्थकर श्रेणिकके पास पहुंचा और मीठे वचनोंसे कुशलक्षेम पूछ गौरवपूर्वक बोला—कुमार! आपका इस नगरमें रहना ठीक नहीं। आपपर राजाका प्रकोप है। यह सुन श्रेणिकने उसका कारण पूछा। उत्तरमें मंत्रीने कहा--किसी नगरवासीने राजासे तुम्हारी यह चुगली खाई है कि—कुमार श्रेणिकने कुत्तोंकी

जूठन खाई है बस इसी बातपर राजाको क्रोध आ गया है। अतएव आप बिना विलंब चले जाइये अन्यथा राजाओंका कोप बड़ा टेढ़ा होता है उसके सामने विद्या विभव आदि सब नष्ट हो जाते हैं। मंत्रीकी यह बात सुन कुमारने कहा कि—जो लोग अपने भोजनको दूसरोंसे नहीं बचा सकते वे राज्यकी रक्षा कैसे कर सकते हैं? लोग तो इस बातकी प्रशंसा कर रहे हैं, फिर राजाको क्रोध कैसे आ गया? तब मंत्रीने कहा कि—यह ठीक है फिर भी राजाकी आज्ञा उल्लंघनी न चाहिये इसलिये तुम्हें चले ही जाना उचित है। मंत्रीके इन दुर्वचनोंसे कुमार श्रेणिक खिन्न हो निकल गया, उसके साथ ही पांच हजार योद्धा भी गुप्त वेष धारणकर बाहर हो गये। पुत्रका देशनिकाला सुन माताको बड़ा ही कष्ट हुआ और वह शोकाकुल हो दिन बिताने लगी।

कुमार श्रेणिकने चलते चलते नंदिग्राममें प्रवेश कर एक सभामंडप देखा और वहां कौतुक देखते देखते वर ढूंढ़नेके लिये आये हुए इंद्रदत्त नामक एक वैश्यसे मुलाकात हो गई। उसको साथ लेकर ब्राह्मणशालामें भोजन मांगने गये परंतु ब्राह्मणोंने उन्हें सूखा ही टाल दिया। वहांसे वे दोनों एक बौद्ध मठमें पहुंचे। उस जगह एक संन्यासीने इन्हें पहिचानकर सत्कारसे भोजन कराया। उसके बाद उसने इन्हें बौद्धधर्मका उपदेश दिया और कहा कि इस धर्मके धारण करनेसे तेरा गया राज्य लौट आवेगा। श्रेणिकने उसे स्वीकार किया और आगे चला।

मार्गमें इंद्रदत्तसे श्रेणिकने कहा—मामा! चलो अपन जिह्वा रथपर सवार होकर शीघ्र शीघ्र चलें। श्रेणिककी यह बात सुन इंद्रदत्तने मनमें कहा—यह कोई मूर्ख लड़का दीखता है, नहीं भला! जिह्वापर चढ़कर कहीं चला जाता है? थोड़ी दूर जाकर मार्गमें पानी भरा मिला उस समय श्रेणिक पैरोंमें जूते पहनकर चलने लगा। यह देख इंद्रदत्त इसकी मूर्खता समझ हँसने लगा। आगे चलकर एक हरे भरे वृक्षके नीचे वे लोग बैठे, इस समय श्रेणिकने अपना छाता तान लिया। इंद्रदत्त तो इसे मूर्ख पहिलेसे ही समझ चुका था अब सोचने लगा कि पेड़के नीचे छायामें छाता सिवा इस मूर्खके कौन लगावेगा! आगे चलकर एक गांव पड़ा, उसे देख श्रेणिकने इंद्रदत्त

से पूछा---मामा ! यह गांव बसा हुआ है या ऊजड़ ? श्रेणिककी यह बात सुनकर इंद्रदत्तको निश्चय हो गया कि अवश्य ही यह लड़का पागल है अन्यथा आदमियोंसे भरें हुए इस गांवको ऊजड़ या बसा हुआ क्यों पूछता। इसके बाद थोड़ी दूर आगे चलकर अपनी स्त्रीको मारते हुए एक पुरुषको देख श्रेणिकने पूछा---सेठजी ! बताइये तो यह स्त्री बँधी हुई है या छूटी हुई। सेठने अबकी बार भी उसे पागल समझ कुछ उत्तर न दिया। इतनेमें एक मुर्दा दिखलाई दिया उसे देख श्रेणिकने कहा---कहिये ! यह अभी मरा है या पाहिलेका मरा हुआ है ? इसके थोड़ी दूर आगे एक हरे भरें धानोंका खेत मिला। उसे देख श्रेणिकने कहा----यह खेत खा लिया गया अथवा आगे खाया जायगा। इसके थोड़ी दूर जाकर एक हल दिखालई पड़ा, उसे देख श्रेणिकने पूछा--इस हलके कितने मालिक हैं ? फिर एक बेरका पेड़ दीख पड़ा उसे लक्ष्यकर श्रेणिकने कहा---मामा ! इस पेड़में कितने तरहके कांटे हैं। श्रेष्ठीने इन प्रश्नोंको सुनकर श्रेणिकको पक्का मूर्ख समझ लिया और इसी तरह तर्क-वितर्क करते करते जब इंद्रदत्तका गांव वेणातड़ाग आ गया तो श्रेणिकसे उसने पूछा कि कहो यहांसे आगे और कहां जाओगे ? उत्तरमें श्रेणिकने बानियोंकी रूखी मित्रताको मन ही मन धिकारते हुए कहा कि---मैं तो इस तालाबके किनारे अभी बैठता हूं, आगे फिर कहीं जाऊंगा। इंद्रदत्त 'अच्छी बात है पर आगे मेरे पूछे विना कहीं न जाना' यह कहकर अपने घर चला गया। नागकुमारीके समान सुंदरी नागश्री नामकी एक कन्या उस सेठके थी। पिताको थके हुए आये देखकर उसने पूछा---पिताजी आपके साथ कोई और भी आया है ? उत्तरमें इंद्रदत्त बोला---हां ! एक मूर्ख मेरे साथ आया है। यह सुन नंदश्रीने उसकी मूर्खताका वृत्तान्त पूछा और सेठने सब पहिली गुजरी बातें ज्योंकी त्यों कह सुनायी। नंदश्री उन बातोंको सुनकर बड़ी खुश हुई और पितासे बोली---वह मूर्ख लड़का नहीं है। उसने जितनी बातें आपसे कहीं सब बुद्धिमानीकी हैं। उसने मामा कहकर तो आपमें अपनी पूज्य बुद्धि प्रगट की। जिह्वारथ पर चढ़कर चलनेसे उसका मतलब बातचीत करते चलनेका था। पानीमें जूता पहिन

कर वह कांटे कंकड़ आदि छिद जानेके भयसे चला था। पेड़के नीचे छाता तानकर इसलिये बैठा था कि कोई पक्षी ऊपरसे पेशाब या बीट न कर दे। नगरको बसा या ऊजड़ इसलिये पूछा था कि जिस गांवमें दानी धर्मात्मा रहते हैं वह तो असलमें आदमियोंसे भरा हुआ है नहीं तो ऊजड़के ही समान है। स्त्रीको छूटी या बंधी हुई पूछा था उससे उसका मतलब रखी हुई या विवाहिता है, यह था। मुर्देको आजका या पहलेका मरा हुआ पूछा उससे उसने यह बतलाया कि इसने जीवनके काम दया अहिंसा आदि किये वा यों ही मर चला। खेतको खाया हुआ वा खाये जानेवाला पूछा था उसका मतलब यह था कि इस खेतपर मालिकने कहीं कर्ज तो नहीं कर रखा है? एक हलको देखकर उसके अनेक स्वामियोंको पूछनेसे तात्पर्य था कि इस किसानका एक महाजन है अथवा बहुतोंसे कर्ज ले रक्खा है? बेरके कांटे पूछनेका यह अभिप्राय था कि दुर्जनके वचनोंके समान इसके अनेक कांटे हैं या एक। इसके बाद नंदश्रीने कहा कि पिताजी वह बुद्धिमान कहां है? इंद्रदत्तने जवाब दिया कि वह तालाबके किनारे बैठा है। यह सुन नंदश्रीने अपने मनमें उसकी परीक्षा लेनेकी ठानी और विपुलमती दासीको पास बुलाकर कहा कि तू नाखूनोंमें तैल भरकर तालाबपर जा और वहां पिताजीके साथ आये हुए पुरुषको तेल लगाकर नहानेके लिये कह आ। पुत्रीकी आज्ञानुसार दासीने जाकर श्रेणिकसे कहा कि शेठजीने लगानेके लिये तेल भेजा है। आप तेल लगाकर स्नानकर घर पधारिये। दासीकी यह बात सुन कुमारने तेलको तो पानीमें डालनेके लिए कह दिया और चलनेके लिये कारण पूछा, जवाबमें विपुलमतीने कहा कि जिस सेठके साथ आप आये हैं उसके गुण और रूपकी खानि नंदश्री नाम की एक पुत्री है उसने आपको बुलाया है। यह सुन कुमारने पूछा कि तुम्हारा घर कहां है? जवाबमें वह दासी अपना ताड़पत्रका बना कर्णभूषण दिखाकर चली गई। इधर नंदश्रीने भी अपने घरके दरवाजेपर पानी फैलाकर कीच करा दी और पत्थरके टुकड़े रखाकर स्वयं कुतूहल देखने लगी।

कुमार श्रेणिक ताड़के चिन्हसे पहिचानकर नंदश्रीके घर पहुँचे और दरवाजेपर कीच देख सोचने लगे कि नगरमें कहीं तो कीच नहीं देखी फिर वह यहां ही क्यों है? अवश्य इसमें कुछ रहस्य है। इसके सिवा भीतर प्रवेश करनेके लिये ये पत्थरके टुकड़े डाल रक्खे हैं। यदि इन पर पैर रखकर मैं जाऊंगा, तो अवश्य ही गिर पड़ूंगा और तब देखनेवाले मेरी हँसी करेंगे, यह विचार वह कीचमें होकर ही गये। नंदश्री यह कौतुक छिपकर देख रही थी। उसने कुमारके पैर धोनेके लिये दासीके हाथ अंजुलिप्रमाण (पसोंभर) जल भेजा। कुमारको अब नंदश्रीकी चालाकीका पता लग गया। उन्होंने पहिले तो बांसकी खप्पचसे अपने पैरोंकी कीच छुड़ाई और फिर उस अंजुलिप्रमाण पानीसे ही अपने पैर धोकर साफ कर लिये। इसके बाद नंदश्रीने उन्हें भोजनके लिये बुलाया और सत्कारपूर्वक यथास्थान बिठाकर अभीष्ट भोजन करनेके लिये कहा। इसपर कुमारने नंदश्रीकी प्रशंसा करते हुये कहा कि--मेरे पास केवल बत्तीस चावल हैं उनसे बने हुए घी शकर आदिसे मिश्रित पदार्थ खानेकी ही मेरे प्रतिज्ञा है। यदि तुम बना सको तो मैं भोजन कर सक्ता हूं। कुमारकी बात सुन नंदश्रीने कहा--लाइये, चावलोंको मुझे दीजिये। मैं उनसे ही आपके अभीष्ट पदार्थ बना दूंगी। इसके बाद चावलोंको लेकर नंदश्रीने पीस डाला और एक पूआ बनाकर अपनी दासीसे उसे बेच लानेके लिये कहा। दासी पूएको जुआरियोंके अड्डेमें ले गई और वहां यह कह कर कि--यह देवताधिष्ठित पूआ है। जो इसे खरीदेगा, वही अधिक धन जीतेगा। बहुतसे द्रव्यसे उसे बेच दिया। नंदश्रीने उस द्रव्यसे वस्तुयें खरीदकर नाना तरहके खीर पूरी पूआ आदि पकान्न बनाकर तैयार कर दिये और यहां तक कि उसीमेंसे पान भी खरीद कर खिला दिया।

कुमारकी चतुराई और सौंदर्यसे नंदश्री, और नंदश्रीकी चतुराई और सुंदरतासे कुमार, दोनों परस्परमें आसक्त हो गए और जब इंद्रदत्तको मालूम पड़ा तो इन दोनोंका एक साथ विवाह कर दिया एवं वे

परस्पर सुखसे रहने लगे। कालक्रमसे भोग क्रीडा करते २ नंदश्रीके गर्भ रह गया और उससे वह कृश होने लगी। यह देख श्रेणिकने उससे एकांतमें इसका कारण पूछा। नंदश्रीने विनयके साथ जवाब दिया कि--स्वामिन्! मेरे गर्भ रह गया है और ऐसी इच्छा पैदा हुई है कि समस्त देशमें अभयदानका प्रचार हो। अपनी प्यारीकी यह बात सुन श्रेणिकको उस दोहलेको पूर्ण करनेकी चिंता हुई और वह उसी सोच विचारमें नदीके किनारे जा पहुंचे।

इधर कुमार तो दोहला पूर्ण करनेका यत्न सोचनेमें लगे कि इतनेमें उस नगरके राजा वसुपालका हाथी आलानस्तंभ (बांधनेका खंभ) को तोड़कर नगरमें नाना तरहके उपद्रव करता हुआ वहां ही आ निकला। उसे देख कुमारकी पूर्व चिंता तो दूर हो गई और हाथीको वश करनेका विचार हो गया। मदोन्मत्त हाथीको कुमारने मुष्टियोंसे मारा और नाना तरहके वीरतापूर्ण कौशलसे उसे निर्मद कर वशीभूत कर लिया। अब तो कुमारकी प्रशंसा सब लोग करने लगे और वीरतापर प्रसन्न हो राजा वसुपालने भी सम्मान किया और कहा कि आपकी जो इच्छा हो वह मुझसे मांग लीजिए। जवाबमें कुमारने सात दिन तक समस्त देशोंमें अभयप्रचार करनेकी इच्छा प्रगट की और इस तरह नंदश्रीकी इच्छा पूर्ण हो गयी।

गर्भके दिन पूर्ण हो जानेपर नंदश्रीके पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई और दोहलेके अनुसार बालकका नाम अभयकुमार रखा गया। अभयकुमार परम सुंदर और बुद्धिमान था वह सुखपूर्वक बढने लगा और कालक्रमसे विद्याभ्यासके साथ वह यौवनकी तरफ पैर रखने लगा। इस तरह स्त्री पुत्रके साथ सुख पूर्वक वेणातडाग ग्राममें वास करते श्रेणिकको बहुत वर्ष बीत गए और इधर उनके पिता राजा उपश्रेणिकने जब अपनी आयुका क्षय निश्चित जान लिया तो समस्त सामंतोंके सामने चिलातिको राज्य दे परलोक प्रयाण किया। राज्य पाकर चिलाति उच्छृंखल हो गया। इंद्राणी चोरोंके समान दुःखसे रणवासमें रहने लगीं और अच्छे अच्छे कर्मचारियोंको निकाल उसने दुष्ट दुर्जन स्वभावके लोग नियत कर दिये। यह देख प्रधान मंत्रीने श्रेणिकको एक गुप्त पत्र

लिखकर भेजा। श्रेणिक पत्रके समाचारको पढ़कर बहुत ही प्रसन्न हुआ और इंद्रदत्तकी आज्ञा ले पुत्र स्त्रीको वहीं छोड़ गुप्त वेषधारी पांच हजार योद्धाओंके साथ राजगृहकी तरफ चल पड़ा। श्रेणिकको जब सैन्यसहित आते सुना तो चिलाति बहुतसा द्रव्य साथ ले नानाके पास जंगलमें भाग गया। अब श्रेणिकके लिए सिंहासन खाली था। वह राजाके योग्य छत्र चामर आदि सामग्रीसे भूषित हो अपने नगरमें आया और शुभ मुहूर्तमें सिंहासनपर बैठ राज्य करने लगा एवं बहुतसे देशोंको विजयकर अधिकारमें मिलाकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन आकाशगति नामक विद्याधरने राजसभामें आकर राजा श्रेणिकसे कहा कि—राजन्! विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें केरला नामकी एक नगरी है, उसका राजा मृगांक है और उसकी रानी मेरी बहन मालतीलता है। उसके विलासवती नामकी एक सुंदरी लड़की है। एक दिन सुमति नामक मुनि महाराजसे मेरे बहनोईने 'उस लड़कीका पति कौन होगा' यह बात पूछी। उत्तरमें मुनि महाराजसे पराक्रमी राजा श्रेणिकका नाम सुन वह निश्चिंत हो गया। इधर मराल द्वीपके राजा रत्नचूड़ने उस लड़कीको परम रूपवती देख याचना की। जब मेरे बहनोईने मनाई कर दी तो वह सेना ले लड़नेके लिये चढ़ आया है और नगरको घेरकर पड़ाव डाले पड़ा है। यह देख मैं आपके पास खबर देने दौड़ा आया हूं। अब आपको जो दीखे सो कीजिए। विद्याधरकी बात सुन राजा श्रेणिक क्रुद्ध तो हुए परंतु भूमिगोचरियोंकी वहां गति न होनेके कारण कुछ कह न सके। राजा श्रेणिकको चुप देख जंबू नामक एक व्यक्तिने नमस्कार किया और विद्याधरके साथ केरला नगरीको चल दिया। जंबूने वहां जाकर पापी रत्नचूड़के साथ युद्ध किया और उसके आठ हजार वीरोंको मारकर उसे बांध लिया। इसके बाद उसे लेकर मृगांक और कन्याके साथ राजगृहको लौट आया परंतु महाराज श्रेणिकको विन्ध्याटवीके केरल पर्वतपर ठहरे जानकर सबके साथ वहीं गया। श्रेणिकने उन लोगोंके साथ अति प्रेम दिखलाया और कन्याको ब्याहकर नगरको लौट आये एवं उसके साथ सुखसे रहने लगे।

अथानंतर श्रेणिक नंदिग्रामके लोगोंकी दुष्टताका ख्यालकर उनलोगोंको लूटनेके लिए कुछ आदमी नियुक्त करनेका प्रबंध करने लगे यह देख मंत्रियोंने नम्रतापूर्वक आकर कहा कि महाराज ! विना छिद्र-दोष देखे दंड देना उचित नहीं, पहिले कोई दोष देखिये फिर दंड दीजिए जिससे न्यायका न्याय हो जाय और आपकी इच्छा भी पूरी हो जाय। मंत्रियोंकी इस बातसे श्रेणिक सहमत हो गए और उनके पास एक मेढ़ा भेजकर कहला भेजा कि—मेरे इस मेढेको अपने यहां रखो परंतु न तो यह मोटा ही होने पाए और न दुवला ही। यदि हो जायगा तो समस्त गांवको लूटकर देशसे बाहिर निकाल दूंगा। राजाकी ऐसी आज्ञा पाकर नंदिग्रामके ब्राह्मण बडे चिंतित हुए इतनेमें अपनी पुत्री और उसके पुत्र अभयकुमारके साथ इंद्रदत्त श्रेणिकको राजसिंहासनपर अभिषिक्त जान मिलनेके लिए जा रहा था, उससे उनकी भेंट हो गई। अभयकुमारने ब्राह्मणोंको चिंतित देखकर चिंताका कारण पूछा, उत्तरमें ब्राह्मणोंने यथार्थ वात कह सुनाई। अभयकुमारने उन्हें समझाकर कहा—भाइयो ! इसमें चिंता करनेकी कोई बात नहीं है आप लोग इस मेढ़ेको अच्छे अच्छे अन्न पकवान खिलाकर दो वाघोंके वीचमें रख दिया करें। खानेपीनेसे यह जितना मोटा होगा, वाघोंके डरसे उतना ही दुवला हो जायगा। अभयकुमारके वचनोंको युक्तियुक्त जानकर ब्राह्मणोंने वैसा ही किया और पंद्रह दिन बाद मेढा जैसाका तैसा भेज दिया। राजाने जब उसे जैसाका तैसा देखा तो आश्चर्यमें डूब गया। इसीप्रकार अन्य प्रश्नोंके उत्तर नंदिग्रामवालोंसे मंगाए परंतु अभयकुमारकी सहायतासे उन लोगोंने सबका उचित उत्तर दे दिया। श्रेणिकने कुल दश बातें तलब की थीं और वे यह थीं कि—मेढ़को एकसा रखकर भेजें, बावड़ी लावें, हाथीका वजन करें, काठके ऊपर नीचेका भाग बतलावें, तिलके बराबर तेल दें, गाय भैंस आदि जानवरोंसे भिन्नका दूध दें, एक ही मुर्गा लड़ावें, बालूकी बँटी रस्सी भेजें, घड़ेके भीतर कुम्हड़ा (काशीफल कद्दू) रखकर भेजें, दिन और रातके सिवा अन्य समयपर आकर मिलें परंतु वे न तो मार्गसे ही आवें और न कुमार्गसे, ही जिस समय राजाने उन लोगोंके पास उक्त अंतिम आज्ञा भेजी

तो वे अभयकुमारके कहनेसे गाड़ियोंके नीचे छींकोंको बँधवाकर उनमें बैठकर आए। उस समय दोनों वक्त (संध्या) मिले थे और गाड़ीका एक पहिया मार्ग (लीख) पर चलाया गया था और एक कुमार्ग (बेलीख) पर। इसके बाद वे सब अभयकुमारके साथ राजासे मिले। श्रेणिकने अपने पुत्रका स्नेहसे आलिंगन किया और उसकी बुद्धिकी प्रशंसा की। अभयकुमारके कहनेसे ब्राह्मणोंको क्षमाकर श्रेणिक आनंदसे रहने लगा। नंदश्रीको तो उसने प्रधान महिषी बनाया और अभयकुमारको युवराज पदमें अभिषिक्तकर मंत्रीका पद सौंपा। इस प्रकार सर्वत्र बौद्ध धर्मका प्रचार करते महाराज श्रेणिकको बीतता हुआ काल न कुछ मालूम होने लगा।

अथानंतर उसी नगरमें सागरदत्त नामका एक सेठ रहता था उसके दो स्त्रियां थीं उनमेंसे वसुमित्राके एक पुत्र हुआ था। सेठके मर जानेपर वसुमित्राकी सौत अछिदत्ताने लड़ाई ठान दी और कहने लगी कि यह पुत्र तो मेरा है। बढ़ते बढ़ते विवाद श्रेणिकके दरबारमें आया और उसने उसे अभयकुमारके हाथ सौंप दिया। कुमारने कुछ देर विचारनेके बाद लड़केको धरतीपर रखवाया और हाथमें छुरी लेकर कहा कि—जब दोनों ही अपना २ बतला रही हैं, तब इसको आधा-आधा कर दोनोंको दे देता हूं। यह बात सुन वसुमित्राका हृदय स्नेहसे उमड़ आया। उसने यह कहकर कि इसे मत काटिये, आप उसे ही दे दीजिये, यह मेरा पुत्र नहीं है, उसीका है, अपना अभियोग उठा लिया। कुमार अभयको अब असली बात जाननेमें कुछ कठिनाई न पड़ी, उसने वसुमित्राको पुत्र दे दिया और अछिदत्ताको दंडित किया।

एक दिनकी बात है कि उसी नगरके रहनेवाले बलभद्र नामक किसानकी सुंदर स्त्री भद्राको देखकर वसंत नामक एक क्षत्रिय कामासक्त हो गया। उसने दूती भेजकर उसे अपनेमें अनुरक्त कर लिया और प्रतिदिन रमण करने लगा। किसी दिन उस पापिनीने बनमें एक मुनिराजको देखा और कामसे विह्वल हो उनसे रमण करने की प्रार्थना करने लगी। जबावमें मुनिराजने उसको उस पापसे घृणा दिलाते हुए कहा—"पापिनी! तू अपने

बलवान् पतिको छोड़कर परपुरुषसे रमती है। देख! ये भोग तो सर्पके समान भयंकर हैं; नित्य दुःख देनेवाले हैं और सौंदर्यके नाशक हैं, इनका सज्जन लोग आदर नहीं करते। शील भंग करनेसे पाप लगता है, पापसे यह प्राणी नरकमें जाता है और नरकमें अनिर्वचनीय दुःख भोगता है।" मुनिराजका यह उपदेश अपने पापकी बात उनके मुखसे सुन भद्रा शीलव्रत ले घर चली आई। इसके बाद बसंतने उसके पास दूती भेजी, बहुतसा द्रव्यका लोभ भी दिया, परंतु किसी भी प्रकार जब भद्रा न आई तो वह उसका उपाय सोचने लगा। इसके कुछ दिन बाद उसी नगरमें कापालिक (मंत्रवादी) आया। लोगोंके मुखसे उसकी प्रशंसा सुन वसंत भी गया और प्रतिदिन नाना प्रकारके व्यंजन पकवान ले जाकर सेवा करने लगा। जब कापालिक संतुष्ट हो गया, तो उसने बहुरूपिणी विद्या मांगकर सिद्ध कर ली। एक दिन कामसे विह्वल वसंत जब कि अधिक रात्रि थी, भद्राके घरके पास जाकर मुर्गेकी बाँग देने लगा। बलभद्रने सबेरा हो गया जानकर अपने पशु खोले और खेतकी तरफ चल दिया। वसंतने मौका पाकर बलभद्रका रूप बनाया और घरमें घुस आया। भद्राने उसको चालसे पहिचान कर हल्ला मचाया। इतनेमें बलभद्र लौट आया। अब वे दोनों परस्पर झगड़ने लगे और समान रूपवाले वे राजदर्बारमें पहुंचे। उन्हें देख अभयकुमारने कहा, जो इस तूंवड़ीके छेदमें घुस जायगा, वही सच्चा बलभद्र समझा जायगा। यह सुन वसंत चट उस छेदमें घुस गया। यह देख कुमारने उसको पहचानकर दंड दिया और भद्रा वास्तविक पतिको दे दी। इसके बाद श्रेणिक महाराजकी कूएमें पड़ी मुँदरी अपनी बुद्धिसे निकाल कर अभयने सभीको आश्चर्यमें डाल दिया, और अभयकुमारकी बुद्धिकी सर्वत्र प्रशंसा फैल गई।

अथानंतर अमरावती नगरीमें भरत नामका एक चित्रकार रहता था। उसने एक समय पद्मावती महाविद्या सिद्ध की और उससे यह वर मांग लिया कि वह बिना देखे पदार्थका भी चित्र अंकित कर सके। अब तो वह भरत सुंदर सुंदर चित्र बनाने लगा और उससे संसारमें प्रसिद्ध हो गया।

सिंधुदेशकी विशाला नगरीका पति चेटक था। उसके सुभद्रा नामकी पटरानी और उसके सुन्दरी गुणवती सात पुत्रियां थीं। जिनमें पहली प्रियदत्ता सिद्धार्थ नृपको व्याही गयी थी, दूसरी पिनाकको, तीसरी दशरथको और चौथी प्रभावती महानुदयी (उदयन) को व्याही गयी थी, वाकी तीन अविवाहित थीं। एक समय चित्रकार भरत उस राजाके यहां आया और सातों पुत्रियोंके काढ़े गये चित्रको उसने दिखलाया, जिसे देख राजा वड़ा खुश हुआ। एक दिन तीनों लड़कियां मिलकर चित्रकारके पास जा हँसकर वोलीं कि—इस चेलिनीका नग्न रूप काढ़ दो तो जानें, चित्रकारको महाविद्या तो सिद्ध थी ही, उसने उसका रूप गुह्य तिलकोंसे युक्त काढ़ दिया। यह बात किसी चुगलखोरने राजासे कह दी, जिससे वह चित्रकारपर वहुत ही क्रुद्ध हो गया। यह जान चित्रकार भयसे राजगृह नगरमें जा पहुँचा और वह सुंदर चित्र श्रेणिकको दिखला दिया। चेलिनीकी सुंदरतापर श्रेणिक मुग्ध हो गये। उन्होंने चित्रकारसे इसका सव वृत्तान्त पूछा और उसकी प्राप्ति दुर्गम जान मन ही मन चिंता करने लगे। उसी समय सभामें अभयकुमार आया और पिताको चिंतित देख चिंताका कारण पूछने लगा। श्रेणिकने अपनी सारी हालत कह सुनाई, जवावमें कुमार अभयने कहा कि यह कोई चिंताकी वात नहीं है, मैं आपकी इच्छा पूरी कर दूंगा। राजाने कहा—यह वात तो ठीक है, परंतु वह राजा जैन धर्मका अनुरागी है और मैं वौद्धधर्मावलंवी हूं, वह कभी मुझे अपनी लड़की देनेको राजी न होगा। यह सुन कुमार अभय बोला कि इसका उपाय मैं कर लूंगा।

इसके वाद अभयकुमारने जैनधर्मके भक्त एक वैश्यका वेष वनाया और कुछ जैन लोगोंको साथ ले वह विशाला नगरीमें जा पहुंचा, वहां रत्नोंकी भेंट ले राजा चेटकसे मिला। राजाने प्रसन्न हो नगरीमें ठहरनेका आग्रह किया और कहा कि जैनधर्मके धारण करनेवाले तो मेरे परम प्रिय मित्र और वंधु वांधवोंके समान हैं। जवावमें अभयकुमारने रणवासके समीप ठहरनेका घर मांग लिया और वहां रहने लगा। एक दिन अभयकुमार

जिन पूजा करने खड़ा हुआ था कि तीनों कन्या आईं और उससे नामधाम सब पूछने लगीं। अभयकुमारने कहा कि हम राजगृहसे आए हैं जहांका राजा श्रेणिक है, इसी प्रकरणमें श्रेणिकका चित्रपट भी खोलकर दिखला दिया। बस! अब क्या था वे तीनों ही उसपर मोहित हो गईं और पूछने लगीं कि ऐसा जिनधर्मी वर हमें कहां मिल सकता है? अभयकुमार कन्याओंके दिलकी बात समझ गया, उसने सुरंग द्वारा चलनेका उपाय बतलाया। सुरंगमें कुछ दूर चलकर ज्येष्ठा तो हारके बहाने और चंदा अपनी अंगूठी लानेके छलसे पीछे लौट गईं, चेलिनी अकेली रह गई, उसे अभयकुमार लेकर अपने नगरकी तरफ चला आया। चेलिनी सहित अभयकुमारका आना सुन श्रेणिक अपने सुभटोंके साथ सत्कारपूर्वक लेनेके लिये आया और जिनमती नामक जिनमंदिरमें चेलिनीका पाणिग्रहण कर सुखी हुआ। जब चेलिनीको यह बात मालूम हुई कि श्रेणिक जैनधर्मके आचारसे रहित बौद्ध धर्मावलंबी है तो वह मन ही मन रोने लगी और अभयकुमार सरीखे पंडितोंकी ठगई जान दुःखित हुई। यहां तक कि उसका खाना-पीना तक छूट गया और वह कृश होने लगी। राजाने यह देख उससे असली बात पूछी, तो उसने दुःखके साथ कहा कि जैनधर्मके समान श्रेष्ठ धर्म दूसरा इस संसारमें नहीं है और तुम्हारे उस धर्मका बिल्कुल ही पक्ष नहीं है इसलिये मैं तुम्हारे घर आकर कुस्थानमें पड़ गई हूं, यही चिंता मुझे दिनरात सताती रहती है। यह सुन श्रेणिक बोला कि महाधर्म तो एक बौद्धधर्म है, जिसके प्रभावसे धन राज्य आदि सब संपत्ति मिल जाती हैं। चेलिनीने कहा--रागद्वेष रहित, ध्यानमें लीन, समस्त पदार्थोंका ज्ञाता और कर्म-मल रहित एक जिन भगवान् हैं और वे ही जीवोंको संसारसे तार देनेमें समर्थ हैं। समस्त परिग्रहसे रहित जिन भगवानकी आज्ञामें चलनेवाले मुनिराज ही सच्चे गुरु हैं इसके सिवा सब मिथ्या हैं। श्रेणिकने इसका और कुछ उत्तर न दिया। वे बोले—अच्छी बात है तुम अपनी इच्छाके अनुसार पूजा आदि धर्माचरण किया करो।

एक दिन श्रेणिकसे रानीका जिन धर्ममें पक्ष सुनकर बौद्ध गुरुओंका संघ समझानेके लिए आया और बोला कि पशुओंके समान नग्न रहनेवाले जैन साधु तो कुगुरु हैं, उनकी आज्ञा न मानना चाहिए। देख! हम लोग ज्ञान समुद्रके पार तक पहुंचे हुए हैं। यह सुन रानीने कहा—यदि आप सर्वज्ञ हैं, तो मेरे यहां भोजन कीजिये, फिर मैं आपका धर्म धारण कर लूंगी। बस! बौद्ध साधुओंको निमंत्रण दिया गया और उनके जूते कुछ तो नीचे पृथ्वीमें गड़वा दिये और कुछ भोजनमें मिलवाकर खिला दिये। इसके बाद जब जूते न मिले और उल्टी (वमि) हो गई, तो उन साधुओंको बड़ी लज्जा आई और चेलनीकी शिकायत राजासे जाकर की। राजाने चेलिनीसे आकर कहा--देख! बौद्धधर्मसे बड़ा धर्म कोई इस संसारमें नहीं है। यह सुनकर चेलिनीनें कहा----आपका कहना ठीक है, परंतु मैं आपके गुरु जिस समय ध्यानमें लीन हो बैठेंगे, उस समय परीक्षाकर आपके धर्मको ग्रहण करूंगी। इसके बाद मठमें जिस समय बौद्ध साधु ध्यान करने बैठ गये, उस समय अपनी एक सखीसे वहां आग लगवा दी। मठमें आग लगी देख बौद्ध साधु इधर-उधर भाग खड़े हुए। रानीका यह कृत्य जब श्रेणिकने सुना, तो उन्होंने दुःखसे कहा--यह निंदनीय कर्म तूने क्यों किया? तू तो दया धर्मके पालने में सुचतुर जैन धर्मावलंबिनी है, फिर जीवोंको जलानेका यह उपाय क्यों रचा? राजाका यह उपालंभ सुन रानी ने मुस्कराकर कहा--महाराज! मैंने तो यह समझा था कि इन साधुओंकी आत्मा इस समय मोक्षमें चली गई है, यहां केवल देह ही है और जब इनका ध्यान भंग हो आत्मा लौटकर फिर देहमें आ जायगी, तो इनको संसारमें भटकना पड़ेगा। संसारमें दुःख ही दुःख है, यह आप जानते ही हैं। इसलियें इनको सदा मोक्ष सुखका भोग करते रहनेके लिये, ही मैंने उस घरमें आग लगवा दी थी। इस संबंधमें एक कथा भी है, उसे सुनिये--वत्स देशमें कौशांबी नामक एक नगरी है। किसी समय उसका राजा वसुपाल और रानी यशस्विनी थी। उसी नगरमें सगर चक्रवर्तिके समान धनी सागरदत्त नामका एक सेठ रहता था और उसकी

स्त्रीका नाम वसुमती था। उसी नगरमें समुद्रदत्त नामका एक और सेठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम अर्हद्दत्ता था। उन दोनोंमें परस्परमें यह वात ठहर गई थी कि पुत्र वा पुत्री होनेपर उन दोनोंका परस्पर विवाह कर देंगे। इसके कुछ समय बाद सागरदत्तकी वसुमतीके सांपके आकारका एक पुत्र पैदा हुआ और उसका नाम सुमित्र रक्खा गया। समुद्रदत्तके नागदत्ता नामकी पुत्री पैदा हुई और पूर्व प्रतिज्ञानुसार दोनों का विवाह कर दिया।

एक दिन अपनी माताको रोती हुई देखकर नागदत्ताने रोनेका कारण पूछा। उत्तरमें माताने कहा कि तेरा रूप तो चंद्रमाको भी लजानेवाला है, पर तेरा पति सांपके आकारका है, इसी वातको विचारकर मैं रोती हूं। यह सुन नागदत्ता वोली--माता ! दुःख करनेका कोई कारण नहीं है, वह रात्रिको सांपका कलेवर छोड़कर मनुष्यका रूप धारणकर मेरे संग अच्छी तरह रमण करते हैं। सुवह हो जानेपर फिर सांप वन जाते हैं। इसके उत्तरमें माताने कहा--वेटी ! यदि यह वात है, तो वह सांपका कलेवर मेरे पास भेज देना। लड़कीने अवसर पाकर वह कलेवर माताके पास भेज दिया और माताने उसे आग्निमें जला भस्म कर दिया। वस ! फिर वह सुमित्र हमेशा मनुष्य रूपमें ही रहने लगा। महाराज ! मैंने तो ऐसी ही वात समझ कर घरमें आग लगवाई थी कि वौद्ध साधु तो सव मोक्ष चले ही गये हैं, व्यर्थके इन कलेवरोंसे क्या मतलव है ? रानीकी वातसे निरुत्तर हो श्रेणिक चुप हो चले गये।

एक दिन श्रेणिक शिकार खेलने किसी वनमें जा निकले। वहां यशोधर मुनिराज विराजमान थे, उनको देखकर साथी सुभटोंसे श्रेणिकनें पूछा कि यह नग्न, लंवे लंवे वालोंवाला, तेजस्वी निश्चल कौन खड़ा है ? उत्तर में सुभट वोले कि महाराज, यही चेलिनीके गुरु हैं। यह सुनकर श्रेणिकको वड़ा क्रोध आया। उसने अपने मनमें विचारा कि मेरे गुरुओंका चेलिनीने वहुत भारी अपमान और विघ्न किया है, इसलिए इस समय उसका

वदला क्यों न लिया जाय? वस! यह सोचकर उसने मुनिराजपर अपने शिकारी कुत्ते छोड़ दिये, परन्तु वे उनकी शांतमुद्राको देखकर शांत हो पैरोंमें वैठ गये। यह देख श्रेणिकने सोचा कि अवश्य पाखंडीने कुत्तोंको कील दिया है, इसलिए उन्होंने स्वयं एक भयानक सांप मारकर उनके गलेमें डाल दिया। चौथे दिन रात्रिको जव यह वात श्रेणिकने चेलिनीसे कही, तो उसे महादुःख हुआ और वार २ शोक करने लगी। यह देख श्रेणिक ने कहा--इसमें शोक करनेकी कोई वात नहीं है। वह पाखंडी अपने मंत्रके वलसे सांपको हटाकर कहीं चला गया होगा। रानीने उत्तर दिया--महाराज! यदि वास्तवमें वे मेरे गुरु होंगे, तो अवश्य ही वहां विराजमान रहे होंगे। वस, ऐसा कहकर वह उसी समय श्रेणिकको साथ लेकर गई और वहां ध्यानारूढ़ मुनिराजको देखकर हाहाकार करने लगी। पहले संडासीसे उनके गलेका सांप हटाया, चींटियां दूर कीं और फिर चरणोंमें नमस्कार कर भक्ति प्रकट की। मुनिराजने उपसर्ग दूर हुआ जान अपना ध्यान भंग किया और दोनोंको ही धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया। मुनिराजके शत्रु-मित्रमें समानभाव देख श्रेणिकको वहुत भारी दुःख हुआ और मनमें वार वार पश्चात्तापकर सोचने लगा--मैंने मुनिको मारनेका वहुत भारी पाप किया है। मुनिराजने उनके मनका अभिप्राय जानकर कहा कि राजन्! इसमें दुःख करनेकी कोई वात नहीं है। शुभाशुभ कर्मका फल तो अवश्य भोगना ही पड़ता है। मुनिराजकी वात सुन श्रेणिक चेलिनीसे वोले कि ये मेरे मनकी वात कैसे जान गये? चेलिनीने उत्तर दिया--यह छोटीसी वात जाननेमें क्या धरा है? ये तो आपके पूर्व जन्मोंका समस्त वृत्तान्त कह सकते हैं। चेलिनीकी वात सुनकर श्रेणिकने मुनिराजसे अपने पूर्व भव पूछे और मुनिराज भी गंभीर वाणीसे कहने लगे—

इसी जंवूद्वीपके भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें एक सूरकांत नामका देश है, उसमें सुरपुर नगरका राजा मित्र और रानी श्रीमती थी। उनके पुत्रका नाम सुमित्र था। प्रधान मंत्री मतिसागरके भी रूपिणी स्त्रीसे सुषेण नाम

का पुत्र पैदा हुआ था और व दोनों पुत्र सदा एक साथ खेला करते थे। उनमें राजपुत्र मंत्रिपुत्रको हमेशा तंग किया करता था और पृथ्वीपर गिराकर मुक्कियोंसे मारा करता था। किसी समय वे जलक्रीड़ा करने जाते थे और कमलोंके पत्तोंके नीचे पानीमें डूबकर स्नान किया करते थे। विवेकी सुमित्रको जिस समय राज्य मिल गया, तो मंत्रिपुत्र सुषेणनें भ्रममें आकर सोचा कि यह मुझे जब लड़कपनमें ही दुःख दिया करता था, तो इस समय तो अवश्य ही देगा। बस! यह सोचकर वह वनमें मुनिराजके पास जा दीक्षित हो मुनि हो गया एवं शास्त्रोंको पढ़ने लगा। सुमित्र अपने मित्रको देखनेके लिए उसके घर गया और जब उसे दीक्षित सुना तो बहुत दुःखी हुआ। एक समय राजा अपने वनमें मुनिराजका आना सुन वंदनाके लिए गया और नमस्कारकर बोला कि मित्र! घर लौट चलो। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे दूँगा। राजाकी बात सुन मुनि सुषेणने कहा—भाई! इस तपकी महिमा अपरंपार है, इसके प्रभावसे राज्यकी तो क्या बात, स्वर्ग और मुक्ति तकके सुख प्राप्त होते हैं। जब राजाने देखा कि यह लौटनेवाले नहीं हैं, तो वह बोला—यदि आप तप ही करनेमें राजी हैं, तो मेरे घर भोजन करनेके लिए तो अवश्य आना। इसके उत्तरमें भी मुनिराजने कहा कि ऐसा करनेमें भी व्रतमें अनुमोदनाका दूषण लगता है और वह लगाना अनुचित है। बस! मुनिराजका उत्तर पाकर राजा चुप हो गया और नमस्कारकर अपनी प्रजाकी रक्षा करने लगा। एक समय उसने नगरमें ढोंड़ी पिटवा दी कि मुनिराजको कोई भोजन न दे उनको मैं आहार दूंगा। मुनिराज एक मासका उपवासकर पारणाके लिए नगरमें आये, पर किसीने भी उन्हें आह्वान न किया। जिस समय राजद्वारपर वे आये, उस समय वैरीका दूत आया था और उसकी चिंतामें राजाने आये हुए मुनिराज न जान पाये। मुनिने वनमें जाकर फिर एक महीनेका उपवास मांड़ दिया, और फिर जब पारणाके लिए नगरमें गये, राजाका हाथी आलानस्तंभ तोड़ मत्त हो उपद्रव करने लगा, अतः फिर मुनिका आगमन राजाको न मालूम हो सका। मुनि फिर एक मासका उपवास मांड़ वनमें चले गये और

जब फिर पारणाके लिए आये, तो नगरमें आग लग जानेसे किसीकी दृष्टि उनपर न पड़ी। अंतराय हो जानेसे
मुनि वनकी तरफ लौटने लगे, तो उन्हें देख कुछ लोग कहने लगे—देखो! यह राजा बड़ा पापी है, न तो स्वयं
मुनिराजको भोजन देता है और न दूसरोंको देने देता है। मुनिके कानमें जब यह बात पड़ी, तो उन्हें क्रोध
आया और उसी आवेगमें उनका पैर स्खलित हो गया, जिससे राजाके मारनेका निदान करते हुए उनके प्राण
छूट गये और वे व्यंतर योनिमें पैदा हुए। राजाको जब मुनिका मरण मालूम हुआ, तो वह बहुत दुःखी हुआ और
कुतपस्वी हो मरकर देव हुआ। वहांसे चयकर तुम श्रेणिक हुए हो, वह तुम्हारे खूनका प्यासा सुषेणका जीव भी
इस चेलिनीके गर्भमें आ गया है। इसका नाम कुणिक होगा और निश्चयसे तुम्हें पिंजड़ेमें कैदकर दुःख देगा।
यह सुन श्रेणिकको भी जातिस्मरण हो गया और जब वृत्तान्त यथार्थ जाना, तो वह जिनधर्मका श्रद्धानी हो
घर लौट आया।

राजाको जैनधर्ममें दीक्षित हुआ सुन बौद्ध साधु आकर कहने लगे कि तुम जैनी होते हो तो हो जाओ, पर
परीक्षा करके होओ। इसके बाद राजाने एक जगह हड्डी गड़वाकर रानीसे कहा कि जैन मुनियोंको आहार
कराओ। रानीको राजाकी चालाकी मालूम हो गई, इसलिए उसने आये हुए तीन मुनियोंको तीन अंगुलियों
का इशाराकर पड़िगाहन किया, जिसका तात्पर्य यह था कि आपके तीनों गुप्ति हों तब तो ठहरिये, नहीं
तो नहीं। उत्तरमें मुनिराज दो अंगुली दिखाकर चले गये। गुणसागर नामक मुनिराजको जब उसी तरह
इशाराकर पड़िगाहन किया, तो वे तीनों गुप्ति स्वीकारकर स्थित हो गये। राजाने उनके चरण धोये और
भीतर घरमें आहारके लिए ले गये, परंतु मुनिराजने अपने अवधिज्ञानसे जब हड्डी आदि अपवित्र बस्तुयें समझीं
तो अंतराय समझ बिना आहार किये ही वनको लौट गये। यह देख राजाने रानीसे पहिले तीनों मुनियोंके
न ठहरनेका कारण पूछा। रानीने कहा—मझे नहीं मालूम है, चलिये उनसे ही वनमें जाकर पूछें। तदनंतर

वे दोनों बनमें जाकर धर्मघोष नामक मुनिराजके पास पहुंच कर नमस्कार कर बोले--स्वामिन् ! आप हमारे यहां चर्याके लिए गए और यों ही क्यों लौट आए ? उत्तरमें मुनिराजने कहा--राजन् ! उस समय तुम्हारी स्त्रीने हमें यह इशारा किया था कि यदि आपके तीनों गुप्ति हों तब तो ठहरिये, नहीं तो नहीं । हमारे तीनों गुप्ति थीं नहीं इसलिये नहीं ठहरे । राजाने पूछा--तो आपके कौनसी गुप्ति नहीं है । मुनिराज बोले, सुनो—

मैं कलिंग देशके दंतपुर नगरका राजा था। मुनि हो एक समय विहार करता-करता कौशांबी नगरीमें आया और वहां राजमंत्री गरुड़ और उसकी स्त्री गरुड़दत्ताने मुझे आहारके लिये पड़िगाहन किया। जिस समय वह ग्रास देने लगी तो मेरे हाथसे स्वयं वह गिर पड़ा । ग्रासके साथ मेरी दृष्टि भी जब नीचेकी ओर गई, तो उस गरुड़दत्ताके पैरके अंगूठेको देखकर अपनी स्त्रीके अंगूठेकी याद आ गई । बस इसलिए राजन् ! मेरे मनोगुप्ति नहीं है । इसके बाद राजा उठकर जिनपाल मुनिराजके पास गया। और उनसे भी अपने यहां न ठहरनेका कारण पूछा । उत्तरमें उन्होंने भी कहा कि--मेरे वाग्गुप्ति नहीं थी इसलिए नहीं ठहरा इसका भी कारण यह है कि भूमितिलक नगरका राजा प्रजापाल है उसके धारिणी रानीसे मृगांक नामकी कन्या हुई। उसके रूपकी प्रशंसा सुन चंडप्रद्योत नामक राजाने उसे मांगा । परंतु प्रजापाल देनेके लिए राजी न हुआ, तो युद्ध ठान दिया । युद्धमें प्रजापाल हारकर जब खिन्न हो बैठा था कि उसी समय वनपालने आकर मेरे (जिनपालके) आनेकी उसे खबर दी और वह वंदनाके लिए आकर--मेरी रक्षा कीजिए, मैं बड़ा दुःखी हूं आदि विनयके वचन कहने लगा । इसी समय वनदेवताने उसे अश्वासन देकर भय न करनेके लिए कहा । प्रजापालने वे वचन, मेरे मान लिए और मुनिके वचन तो सदा सत्य ही होते हैं ऐसा समझकर वह संतुष्ट हो घर चला गया और युद्धक्षेत्रमें फिर आ डटा । चंडप्रद्योतनको जब यह मालूम हुआ कि जयपालकी ही अंतमें विजय होगी और वह जैनी है, तो अपने घरकी तरफ लौटने लगा । यह देख प्रजापालने उसके पास सुभट भेजे, पुछवाया कि विना रण किए ही वह क्यों जा

रहा है ? उत्तरमें चंडप्रद्योतन बोला कि--जैनी मात्र मेरे सहधर्मी होनेसे बंधु हैं! भला उनके साथ में युद्ध कैसे कर सकता हूं। चंडप्रद्योतनसे यह उत्तर पाकर जब सुभटोंने जयपालसे कहा तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी लड़की उसे ब्याह दी।

एक समय चंडप्रद्योतनने क्रीडा करते समय मृगांकासे कहा कि तेरा पिता जैनी होनेके कारण मैंने युद्धमें छोड़ दिया था। इसके उत्तरमें मृगांकाने कहा--स्वामिन्, मुनिराज जिनपालने उन्हें अभय दिया था, इसीलिए वे जीते न जा सके। रानीकी इस बातसे असम्मत हो उसने कहा--मुनि तो शत्रु मित्रमें समान भाव रखते हैं उनके राग द्वेष होता ही नहीं। यदि कदाचित् तुम्हारा कहना ही ठीक हो तो चलो चलें उनसे ही असली हाल पूछें। अब वे दोनों मुनिराजके पास पहुंचे और नमस्कार कर बोले कि--महाराज, किसीका अभय और किसीका नाश विचारना क्या जैन शास्त्रोंमें कहा गया है? मैं यह सुन ध्यान करने लगा। यह देख मृगांकाने कहा--नहीं उस समय मुनिराजने कुछ न कहा था बल्कि आकाशवाणी हुई थी। इस प्रकार उन दोनोंका भ्रम मिट गया और वे घर चले गये। मैं जब तुम्हारे भवनमें भोजन करने आया, तो चेलिनीने कहा कि तीनों गुप्ति हों तो ठहरिए। हमारे वे थीं नहीं इसलिये चले आए। इसका भी कारण यह था कि जिनके तीनों गुप्ति रहती हैं उनके नियमसे अवधिज्ञान रहता है जिससे वे सब जान सक्ते हैं। श्रेणिक जैन साधुओंकी प्रशंसा कर आगे बढा और श्रीमणिमाली तीसरे मुनिराजसे अपने भवनसे लौट आनेका कारण विनयपूर्वक पूछने लगा। उत्तरमें मुनिराजने कहा कि---राजन् मेरे कायगुप्ति न थी, इसलिये मैं नहीं ठहरा। उसका वृत्तांत सुनो----

"मणिवत् देशमें मणिवत् नामका एक नगर है। वहांका राजा मैं मणिमाली नामका था। मेरी रानी गुणमाला थी और मणिशेखर नामका पुत्र था। मैं नाना तरहके भोग भोगनेमें आसक्त था एक दिन मेरे केशोंको संभालते

हुए गुणमालाने कहा कि—देखिये ! यमदूत (श्वेतबाल) आगया, अब शीघ्र आत्महित कीजिए। यह सुन मैंने अपना राज्य तो पुत्रको दिया और ज्ञानसागर गुरुके पास जा दीक्षा ले ली। राजन्, एक दिन मैं उज्जयिनीके श्मशानमें ध्यान करने बैठा था कि एक मंत्र सिद्ध करनेवाला कौलिक हड्डीके आभरण पहिन नंगा धड़ंगा बैतालीय महाविद्या सिद्ध करनेके अभिप्रायसे वहां आया। उसने मेरी देहको मुर्दा समझा इसलिए दूसरा एक और मुर्देका मस्तक उसके पास लाकर रख दिया इसतरह उसने चूल्हा बनाकर खीर पकानेके लिए आग जलाना प्रारंभ किया। ज्यों-ज्यों आग जलती, त्यों-त्यों मेरे मस्तकमें नरकके समान पीड़ा होती, परंतु मैं आत्म-ध्यानमें लीन था। जब मेरी नसें सिकुड़ने लगी, तो मेरे दोनों हाथ खड़े हो गये और दूध फैल गया। यह देख डरसे कौलिक भाग गया। जब दिन हुआ, तो वनमालीने मुझे उक्त आपत्तिसे ग्रस्त देख जिनदत्त आदि श्रावकोंसे यह समाचार कहे। वे लोग शोकाकुल हो मेरे पास आये और हाथोंपर उठाकर मुझे नगरमें ले गये। वहां मैं जिनदत्तके घरमें रखा गया। जिनदत्तने एक अच्छे वैद्यको मुझे दिखलाकर औषधि पूछी। वैद्यने कहा कि लाक्षामूलके तेलसे यह व्याधि जाती रहेगी। 'वह तेल कहां मिलेगा' पूछनेपर वैद्यने कहा कि सोमशर्माके घरमें है। जिनदत्त तेल लेनेके लिए वहां गया और उस ब्राह्मणकी स्त्री तुंकारिकासे बोला---बहिन ! मुनिराजकी दाह शांत करनेके लिए तैल दे दो, और जो मूल्य हो ले लो। उत्तरमें तुंकारीने कहा कि मैं मूल्य तो लेती नहीं। ऊपर अटारीमें कांचके घड़े रक्खे हैं, उनमें से जितना चाहो ले लो। जिनदत्त ऊपर जाकर ज्यों ही कांचके घड़ेको उठाने लगा, त्यों ही वह फूट गया। नीचे आकर भीत हो तुंकारीसे घड़े फूटनेके समाचार कहे। उसने कहा---फूट जाने दो, तुम दूसरा ले जाओ। परंतु जब दूसरा घड़ा उठाने गया, तो वह भी फूट गया। जिनदत्तने फिर आकर जब तुंकारीको सूचना दी, तो उसने तीसरे घड़ेको ले जानेके लिए कहा ; परंतु दैवात् वह भी फूट गया। इस तरह उसके सातो घड़े एक-एककर फूट गये, परंतु तुंकारीको क्रोध बिलकुल न आया। यह देख जिनदत्त आश्चर्यमें

आकर उससे पूछा--बहिन, मैंने तेरी इतनी हानि कर दी, तो भी तू मुनिके समान शांत क्यों बनी है? त्वंकारीने
कहा--भाई, मैं क्रोधका फल भोग चुकी हूं, इसलिए उसके फंदेमें नहीं पड़ती। इसका वृत्तान्त इस प्रकार है---
आनंदपुर नगरमें राजाके समान धनी शिवशर्मा नामका एक शेठ रहता है। उसकी स्त्रीका नाम कमलश्री है।
उनके आठ पुत्र हुए और भट्टा नामकी मैं लड़की पैदा हुई। एक समय पिताजीनें राजासे जाकर कहा--महाराज,
ऐसी आज्ञा कर दीजिये कि आप वा कोई भी अन्य नगरवासी मेरी पुत्रीको त्वंकार न कहे। सेठकी यह बात
राजाने स्वीकार कर ली। अब तो मैंने सबसे स्पष्ट कह दिया कि जो कोई मुझसे त्वं कहेगा, उसका अनिष्ट किये
बिना मैं कभी न मानूंगी। इसीलिए उसी समयसे मेरा नाम लोगोंने त्वंकारी रख दिया। इस तरह पिताके घर
मैं सत्कारके साथ परंतु क्रोध करती हुई रहती थी। एक समय श्रीगुणसागर नामके मुनिराज आयें और राजा
आदि जब उनकी बंदनाके लिए गये, तो मैं भी उनके साथ गई। वहां मुनिराजसे सबने संसारको नष्ट करनेवाले
अपनी-अपनी शक्ति अनुसार व्रत लिये। मैंने भी बिना किसी प्रकारकी ईर्ष्याके शील पालनेका नियम लिया।
मैं भाइयोंके साथ आनंदसे रहने लगी, परंतु मेरा कर्कश स्वभाव जानकर कोई भी विवाह करने राजी न होता
था। जब मेरी यौवनावस्था आरंभ हुई, तो माता-पिता वर खोजनेकी चिंता करने लगे। एक समय सोमशर्मा
जुएमें अपना सब द्रव्य हार गया था और उसे जुआरी मिलकर मुक्कियोंसे मार रहे थे। इतनेमें मेरा पिता वहां
पहुंच गया और उससे बोला कि यदि तू मेरी लड़कीसे विवाह करना स्वीकार कर ले, तो मैं तुझे छुड़ा दूं।
सोमशर्माने यह स्वीकार कर लिया और पिताजीने जुआरियोंका कर्ज चुका दिया। साथ ही उसे इस बातकी
भी सूचना दे दी कि मेरी पुत्रीसे वह कभी त्वंकार न कहेगा। आखिर सोमशर्माके साथ मेरा विवाह हो गया
और हम भोग भोगने लगे। एक दिन मेरा पति नाट्यशालामें तमाशा देखने गया था और आधी रातके बाद
आकर दरवाजेपर किवाड़ खोलनेके लिए पुकारने लगा। पहले तो उसने मुझे अच्छी तरह संबोधन कर पुकारा

और कहा--अजी ! किवाड़ खोल जाइये परन्तु जब अधिक देरतक भी दरवाजा न खुला तो उसने मुझे 'तू किवाड़ खोल जा' कह कर आवाज दी। यह सुन मेरे क्रोधका ठिकाना न रहा। मैं घरसे वाहर निकल पड़ी। मैं उस समय गहने पहन थी इसलिये चोरोंने पकड़ कर अपने नायक भीमभिल्लाको सौंप दी। उसने मुझसे अपनी स्त्री होनेके लिये कहा। मैंने उसको यह कहा कि 'कुलस्त्रियोंका यह काम नहीं है' रोका परंतु कामातुर हो वह जबर्दस्ती करनेपर उतारू हुआ उस समय वनदेवताने सहायता की और वह एवं उसके सेवक सब उसने मार भगाए। देखो ! शीलका कितना महात्म्य है कि देव भी उसकी प्रशंसा करते हैं। और की तो क्या बात। शीलके प्रभावसे चक्रवर्तीकी संपदा, स्वर्गकी लक्ष्मी और मोक्ष तकके सुख सहजहीमें मिल जाते हैं। इसके बाद क्रोधमें आकर भीलने मुझे पापी दुष्ट एक बनियेके हाथ बेच दिया। वह मुझे रोज मीठे मीठे भोजन कराता था और पंद्रह दिनमें एक वार मेरी नसोंकी फस्त खुलवाकर खून निकलवाया करता था जिससे वह कंबल आदि अधिकत्तर रेशमी वस्त्र रंगा करता था। उसके पास लाक्षामूल तैल था, और उसे लगाकर मेरी देहकी व्यथा दूर कर दिया करता था। इतना मैं सब कष्ट सहती थी परन्तु डरसे विना कुछ कहे यही सोचा करती थी कि--देखो कर्मोंकी विचित्र गति। कहां तो मैं घरमें किसीका 'तू' शब्द भी सह न सकती थी और अब ऐसे दुःख भोग रही हूं। किसी समय मेरे भाई धनदेवको उज्जयनी पतिने पारासुर राजाके पास भेजा, जिस समय उसने मुझे देखा तो वह अपने साथ ले आया और मेरे पिताने सोमशर्माको बुलाकर दे दी। एक समय मुनिराजके पास जाकर मैंने कोप न करनेका व्रत लिया उसी समयसे महादुःखदायी क्रोधको मैं नहीं करती।

तुंकारीकी यह कथा सुन जिनदत्त तैल लेकर अपने घर आया, और उसके लगानेसे मेरी समस्त व्याधि चली गई।

उसी समय चौमासेके दिन आगये इसलिये मुझे वहींपर रहना पड़ा। जिनदत्तका लड़का जुआरी था उसके डरसे एक दिन रत्नोंका भरा घड़ा मेरे समीप जिनदत्तने गाड़ दिया, परंतु पुत्रको यह बात मालूम हो गई उसने वहांसे निकालकर दूसरी जगह गाड़ दिया। मैं यह सब वृत्तांत देख रहा था। जब चतुर्मास हो गया, तो मैंने अन्यत्र विहार किया। सेठने जब रत्नोंका घड़ा अपनी जगहपर न पाया, तो उसको मुझपर संदेह हुआ। उसने भ्रमवश चारों तरफ अपने सेवक मुझे खोजनेंके लिए भेज दिये। एक तरफ वह खुद भी इसी चिंतामें निकल पड़ा और मुझे देख हर्षित हो अपने घर ले जाकर बोला---नाथ, मुझसे कोई शुभ कथा कहिये। मैं उसका अभिप्राय समझ गया था, इसलिए बोला कि नहीं, तुम्हीं कोई कथा कहो, मैं आनंदसे सुनूंगा। जिनदत्त जवाबमें कहने लगा—

बनारसके राजा जितशत्रुके धनदत्त नामक एक वैद्य था, उसकी स्त्रीका नाम धनदत्ता था। उन दोनोंके धनमित्र और धनचंद नामके दो मूर्ख पुत्र थें। इसलिए जब पिता (धनदत्त) मर गया, तो उनकी वृत्ति छीनकर राजाने दूसरे शास्त्रज्ञ वैद्यको दे दी। अब तो दोनों भाई चंपापुरीमें शिवमूर्ति वैद्यके पास पढ़ने गये और जब पढ़ लिखकर घर लौटने लगे, तो उन्हें मार्गमें एक अंधा बाघ मिला। उसे देख धनमित्रने छोटे भाईसे कहा–देख, मैं इसे सूझता (आंखोंवाला) किये देता हूं। छोटे भाईने ऐसा करनेके लिए निषेध किया, पर उसने न मानी। जब व्याघ्रकी आंखें अच्छी हो गई, तो उसने सबसे पहिले धनमित्रकोही खा डाला। सो ठीक ही है कि कृतघ्न पुरुषोंके हजारों उपकार करो, परंतु वे एक भी नहीं मानते।

अब तो मैं और भी अच्छी तरह समझ गया कि सेठका मुझमें अविश्वास हो गया है, इसलिए मैंने एक कथा कहना प्रारंभ किया।

हस्तिनापुरके राजा विश्वसेनके वसुकांता रानीसे वसुदत्त नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। एक समय

किसी व्यापारीने बहुत बढ़िया आमका फल लाकर राजाकी भेंट चढ़ाया और उसको सब रोगका नाशक अमृत के तुल्य बतलाया। राजाने जाकर वह रानीको दिया, रानीने पुत्रको और पुत्रने फिर राजाको दे दिया। अनकी राजाने उसे अच्छा होनेके कारण बगीचेमें बोनेके लिए मालीको दे दिया। मालीके बोनेके कुछ दिन बाद उसके पेड़पर फल लग गये। इसी समय एक गृद्ध सांपको मुंहमें लेकर आकाशमें जा रहा था कि उसके विषकी बूंद उस पेड़के एक फलपर पड़ गई। फल विषकी गरमीसे पीला पड़ गया। मालीने उसे पका समझ राजाकी भेंट किया। राजाने मालीको तो धन दे विदा किया और फल लड़केको खानेको दिया। फल खाते ही लड़का मूर्छित हो गिर पड़ा। यह देख राजाने उस पेड़को खुदवाकर फेंक दिया। पुत्रकी चिकित्साके लिये जब वैद्य बुलाया, तो उसने विषजन्य मूर्छा बतलायी एवं उसी पेड़के फल खिलानेसे वह दूर हो गई। यह देख राजाको बड़ा दुःख हुआ और वह उस विष दूर करनेवाले वृक्षको कटवाकर फेंक देनेपर बहुत ही दुःख मानने लगा। इसलिए हे श्रेणिक ! बिना विचारे न तो कोई बात ही कहना चाहिए और न कोई काम ही करना चाहिए।

इसके बाद सेठने फिर कहना शुरू किया। वह बोला—

गंगाके किनारे विश्वभूत नामका एक तपस्वी रहता था। एक समय उसने गंगामें बहता हुआ हाथीका एक छोटा बच्चा देखा। वह उसने निकालकर पाल-पोसकर बड़ा किया। जब वह चढ़ाईके योग्य हो गया, तो राजा ले गया और उसे अंकुशसे शिक्षित करने लगा, परंतु वह गंगाके तीरपर भाग आया। तपस्वीने जब मना किया, तो उसने तपस्वीको ही मार डाला। कहिये मुनि, क्या उसने यह ठीक किया ?

इस तरह कथनोपकथनसे जब कुबेरदत्तने अपने पिताका दुष्ट अभिप्राय जाना, तो उसने वह रत्नोंका घड़ा लाकर उपस्थित कर दिया। अब तो पिता-पुत्र दोनों द्रव्यकी निंदा कर कहने लगे---हा ! इस धनको धिक्कार है, जिसके मोहमें फँस मुनि भी चोर समझ लिए जाते हैं। इसके बाद वे दोनों दीक्षा ले मुनि हो गये। हे

वनमें चला आया था।
श्रेणिक, इस तरह कायगुप्ति न होनेके कारण मैं तुम्हारे यहां न ठहर वनमें चला आया था। उसके चेलिनीसे कुणिक
इस प्रकार राजा श्रेणिक जैनधर्ममय सम्यग्दृष्टि हो राज्यसुख भोगने लगा। उसके चेलिनीसे कुणिक
वारिषेण, शिव, हल्ल, विहल्लक और जितशत्रु ये छह पुत्र उत्पन्न हो चुके और सातवां गर्भमें आया, तो
रानीको वर्षाकालमें हाथीपर चढ़कर घूमनेका दोहला पैदा हुआ। असमयकी इच्छा पूर्ण न होती देख राजा
को बड़ी भारी चिंता हुई। वह रानीकी कृशताके साथ स्वयं भी कृश होने लगा। यह देख अभयकुमारने
विनयपूर्वक उस कृशताका कारण पूछा और श्रेणिकसे उसका कारण दोहलाकी अपूर्णताका जाना, तो उसने
उन्हें समझाकर कहा—आप चिंता मत कीजिये। मैं आपकी इच्छा पूर्ण कर दूंगा। इसके बाद हाथमें तल-
वार ले अति भयंकर श्मशान भूमिमें प्रेत देखनेके लिए गये। तब आधी रातका समय था, चारों तरफ अंधकार
ही अंधकार था और सांप, बाघ, शाकिनी, डाकिनी, राक्षसी आदिसे वह श्मशानभूमि व्याप्त थी। कुमार
अभयने निर्भयतापूर्वक वहां जाकर बड़के वृक्षपर दीपक जलते हुए देखे और हाथमें माला लेकर जपते
हुए पुरुषको पूछा—तुम कौन हो, कहांसे आये हो और क्या जप रहे हो? जवाबमें उस पुरुषने कहा—भाई!
विजयार्द्ध पर्वतके उत्तर श्रेणिमें गगनप्रिय नामका एक नगर है, वहांका राजा मैं वायुवेग हूं। एक समय मैं चैत्या
लयोंकी बंदनाके लिए सुमेरु पर्वतपर गया था, वहां विजयार्द्धवासी बालककी पुत्री सुभद्रा मुझे दीख पड़ी। मैं
उसे देख आश्चर्यमें आ गया और कामसे पीड़ित हो मैंने वह हर ली। सुभद्राके पिताको जब यह हाल मालूम
हुआ, तो वह क्रुद्ध हो मेरे पास आया और मेरी समस्त विद्यायें छीनकर लड़कीको अपने घर ले गया। उस
समयसे मैं भूमिगोचरी हो मंत्र जप रहा हूं। आज मुझे बारह वर्ष तो बीत गये, परंतु विद्यायें सिद्ध नहीं हुईं। अब
मैं घर जाना चाहता हूं। विद्याधरकी यह बात सुन अभयकुमारने उससे वह मंत्र मांग लिया और दृढ़ आसन
और ध्यान लगाकर जपनेमें शीघ्र ही महाविद्या सिद्ध हो गई। इसके प्रभावसे विद्याधरको भी वह विद्या सिद्ध हो गई,

तो दोनोंमें परस्पर गाढ़ी मित्रता हो एक दूसरेको नमस्कार करने लगे। सो ठीक ही है। स्त्री-पुत्र, विद्या, राज्य, यश आदि सब पुण्यके प्रतापसे होते हैं। अभयकुमारने घर आकर विद्यासे वर्षाऋतु बनाई और उसमें रानीको घुमा-फिराकर उसकी इच्छा पूर्ण की। गर्भके दिन पूरे हो जानेपर पुत्र पैदा हुआ, उसका नाम दोहलेके अनुसार मेघ-कुमार रक्खा गया।

इस तरह बुद्धिमान, अर्हंत भगवानके भक्त, धीर गंभीर अभयकुमार एवं पट्टरानीके सात पुत्रोंसे युक्त श्रेणिक सब प्रकारके सांसारिक भोग भोगते थे। सूर्यके समान तेजस्वी, चंद्रमाके समान प्रिय और बृहस्पतिके समान बुद्धिमान थे। उनके राजा, मंत्री, मित्र, कोप (खजाना), देश, दुर्ग, (किला) और सेना ये राज्यके सातों अंग सुदृढ़ थे। केशरके तिलकसे सुशोभित मोतियोंके हारसे मनोहर नाना तरहके भूषणोंसे भूषित थे। ये याचकोंको तो सुवर्णका दान देते थे, परंतु शत्रुओंसे भेंट लिया करते थे। मोक्षके इच्छुक वे गुणग्राही सम्यग्दृष्टि और धर्मकथा सुननेके प्रेमी थे। सज्जनोंके हितैपी, दुर्जनोंके बैरी उनके दो हजार राजा सेवक थे। इस प्रकार महाविभूति के साथ वे इन्द्रके समान राज्य करते थे।

एक समय विपुलाचलपर जगत्पूज्य श्री १००८ महावीर स्वामीका आगमन हुआ। इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने समवरणकी रचना की उसमें मरकतमणिके पीठसे सुशोभित सिंहासन बनाया गया, पांच भींत, वीस हजार पैडियां और बारह सभायें बनाई गईं। मानस्तंभोंसे उसे अलंकृत किया गया। कमलसहित तालाब बनाये गये और उनमें हंस सारस आदि पक्षी मीठे मीठे शब्द करने लगे। वहां गायों और सिंहोंके बच्चे साथ साथ खेलते थे। नोले और सांप मित्र हो गये थे। इस प्रकार जातिगत वैर तक छोड सब परस्पर उन भगवानके प्रभावसे हितैपी हो गये थे। सूखे तालाब वावड़ी पानीसे भर गईं थीं, वृक्ष हरे हो गये थे और लताओं फल फूल लग आये थे। उस समय छहों ऋतु एक साथ अपना आनंद दे रही थीं, कोकिल मयूर आदि बोलने लगे थे। मालीने

जब यह अद्भुत बात बगीचेमें देखी तो सोचने लगा कहीं मुझे हरिणोंको जिस प्रकार चमकती हुई बालूमें जलकी
भ्रांति हो जाती है, उसी प्रकारकी भ्रांति तो नहीं हो गई है। आगे कुछ दूर चला तो उसे आकाशको गुंजाने-
वाला दुंदुभिका शब्द सुनाई पड़ा। आगे और कुछ बढा तो उसे तीस हजार ध्वजाओंसे शोभायमान और विमानमें
बैठे हुये देव देवांगनाओंके जय जय शब्दोंसे शब्दायमान, अपूर्व श्री दीख पड़ी। वनपाल यह देख शीघ्र ही वे
ऋतुके फल फूल लेकर राजाके पास गया और महावीर स्वामीके आगमनके शुभ समाचार जा सुनाये। श्रेणिक
उसी समय सिंहासनसे उठा और परोक्ष विनय करनेके लिये सात पैंड चलकर नमस्कार किया। कुबेरके समान
उसे राजाने मालीको वस्त्राभूषण प्रदान किये और वंदनार्थ जानेके लिये नगरमें डोंढ़ी पिटवा दी उससमय श्रेणिकने
अपने मदोन्मत्त उन्नत हस्तियोंको सुवर्णके अंबारा आदिसे सजवाया, आकाश और भूमिको अपने गमनसे एक
करनेवाले छत्तीस प्रकारके सुंदर शीघ्रगामी घोड़े जीन आदिसे सुमज्जित करवाए। समवशरण पर्यंत समस्त पृथ्वी
पर कपड़े बिछवाये। नाना प्रकारके बाजे और जय जयकार शब्दोंसे आकाशको गुंजाते हुए नगरवासियों
के एवं अपने पुत्र और चेलिनी आदि रानियोंके एवं चारों प्रकारकी सेनाके साथ छत्र चामर आदि राजलक्ष्मीके
चिन्होंसे सुशोभित हो राजा श्रेणिक भगवान महावीरकी वंदनाके लिए चल पड़ा।

जिस समय उसे मानस्तंभ दीख पड़ा, तो उसने हाथीसे उतरकर साष्टांग नमस्कार किया, अपने राजचिन्ह
सब दूर कर दिये एवं 'निःसहि' कहकर समवसरणमें प्रविष्ट हुआ। विशाल कोटोंको उलंघकर नाना तरहकी
शोभाको देखते हुए श्रेणिकने सिंहासनपर विराजमान महावीर भगवानको देखा। उस समय उसने उनकी
तीन प्रदक्षिणा दीं और नमस्कार किया। पूजा और स्तुति करनेके बाद वह मनुष्योंके कोठोंमें जा बैठा। उसने
भगवानसे अपने पूर्वभव पूछे और उन्हें सुनकर जब वह चुप हो गया, तो नमस्कारकर अभयकुमारने अपने पूर्व
भव पूछे और जवाबमें भगवान कहने लगे—

एक ब्राह्मण वेद पढ़नेके लिए जा रहा था, उसके साथ एक श्रावक भी हो लिया। मार्गमें कुछ दूर चलकर एक बड़का पेड़ पड़ा। उसे देख ब्राह्मणने उसकी तीन प्रदक्षिणा दीं और विनयपूर्वक नमस्कार किया। श्रावकने उस समय मुस्कराकर बड़के पेड़के पत्ते तोड़ लिये और अपने पैर पोंछकर पत्ते जमीनपर फेंक दिये। यह देख ब्राह्मणको बड़ा गुस्सा आया और बोला---नहीं जानता ! देवताके अविनयसे कष्ट होता है। श्रावक जवाबमें बोला---अच्छी बात है, यदि यह सच्चा देवता होगा, तो अवश्य मेरा नाश कर देगा। ब्राह्मणने वैश्यसे कहा---तुम्हारा कौनसा देव है। वैश्य बोला---यह पूछनेसे तुम्हारा क्या मतलब ? ब्राह्मणने कहा---मैं भी इसी प्रकार उसका तिरस्कार कर परीक्षा करूंगा। इतनेमें कुछ दूर चलकर एक कपिकच्छ (खुजली करनेवाले) का पेड़ पड़ा। श्रावकने उसे ही अपना देव बतला दिया। ब्राह्मणने हँसकर उसके पत्ते तोड़ लिये और अपने शरीरमें मलकर चलने लगा। ब्राह्मण कुछ ही आगे चला होगा कि उसे खुजली मचने लगी, यहां तक कि वह धरतीपर लुढ़कने लगा। अब वह श्रावकसे बोला---सचमुच तुम्हारा देवता तो सांचा है। इस प्रकार श्रावकने उस ब्राह्मणकी देवमूढ़ता दूर कर दी। इसके बाद आगे चलकर गंगा पड़ी। ब्राह्मण भागीरथी हरि आदि भक्तिके वचन कहता हुआ उसमें नहाने लगा। यह देख श्रावकने ब्राह्मणसे पूछा---भाई ! इस तीर्थका क्या माहात्म्य है ? ब्राह्मणने जवाब दिया---यह मुझ सरीखे पापियोंको तारकर पंचहत्याओंको नाश करनेवाले वैकुंठको देती है। यह सुन श्रावक उसके किनारे भोजन करने बैठ गया। जब खा चुका, तो जूठन गंगाके जलसे भिगोकर ब्राह्मणको दे दी। यह देख ब्राह्मण क्रुद्ध हो बोला---अरे, मेरा भोजन खराब कर दिया। श्रावकने कहा---जल्दी-जल्दी खा क्यों नहीं लेते ? ब्राह्मणने जवाब दिया---बता तो, तुझ पापी शूद्रके स्पर्श किये गये जूठे भोजनको मैं कैसे खा लूं ? श्रावकने कहा---अरे भाई ! जो तुझे पवित्र कर सकती है, ऐसी गंगा क्या अपने जलसे धान्यके बने भोजनको पवित्र नहीं कर सकती ? इस प्रकार नाना हेतु प्रहेतुओंसे समझानेपर

ब्राह्मणको यथार्थ ज्ञान हो गया। उसने श्रावकको अपना गुरु समझा और उससे जैन तत्त्व सीखा। वहांसे आगे चलते चलते दोनों एक क्रूर जंतुओंसे भरे वनमें जा निकले और रास्ता भूल गये। उस जगह श्रावकके साथ ब्राह्मणने सन्यास ले प्राण छोड़े एवं वह (ब्राह्मण) पहिले स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ वहांसे चयकर तू श्रेणिकके अभय नामका पुत्र हुआ है और तप कर इसी भवसे मोक्ष जायगा।

इसके वाद श्रेणिकने हाथ जोड़ महावीर स्वामीको नमस्कार किया और "हे संसारके पालक! हे गुणोंके समुद्र! हे जगतके स्वामी! हे सुर असुरों द्वारा पूजित चरण! हे कल्याणके देनेवाले! हे ज्ञानमय! हे अज्ञानांधकारके नाशक! हे मोहके जीतनेवाले! हे कामको जलानेवाले जिनेंद्र! मैं आपसे पापके नाशक विमलनाथ भगवानके चरित्रको सुनना चाहता हूं। हे सर्वज्ञ! उस समय धर्मात्मा धर्म नामक वलभद्र, स्वयंभू नामक नारायण और मधु नामक प्रतिनारायण हुये। परंतु उनका वल आदि कैसा था यह नहीं मालूम। कृपाकर उसे भी कहिए। संजयत मुनिका तप, उनपर उपसर्ग, केवलज्ञानका कारण, उनके गणमें ही उत्पन्न अन्य दो मुनियोंका चरित्र आदि, सव कहिए क्योंकि दानी ध्यानी मुनियोंके, शूरवीर चक्री प्रतिचक्रियोंके और चरम शरीरी कामदेवोंके चरित्र सुननेसे कल्याणकी प्राप्ति होती है। अतएव रागद्वेषसे पराङ्मुख भव्य जीव उन्हें ही सुनना चाहते हैं।" इस प्रकार विनय कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक अपने पुत्र और रानी चेलिनीके साथ चुप हो अपनी जगह बैठ गया।

सर्गांत मंगल

सकलपुरुषपूजित, देवता ध्यान ध्यावैं, सकल दुखनहर्ता पापपंक्ती जलावैं।
सुवर्ण वर्णधारी, सूर्यभा भी लजावैं, सन्मति जिन ईश्वर ध्यान उनका लगावैं।

इस प्रकार छोटे भाई श्री मंगलदासकी सहायतासे श्री ब्रह्म कृष्णदास द्वारा विरचित संस्कृत विमलपुराणकी टेहू (आगरा) निवासी प० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिन्दी वचनिकामें श्रेणिकके चरित्र और उनके प्रश्नोंको कहनेवाला पहिला सर्ग समाप्त हुआ।

दूसरा सर्ग

जयवंतो जिनवर सदा, मोह-हरण जगवीर ;
शिव सुखदाता सर्वहित, ज्ञानसुधाधर धीर ।

अथानंतर वीर भगवान अपनी समुद्रके समान गर्जनेवाली, सात नयोंसे सुशोभित, दर्शन–ज्ञानसे युक्त संसारकी नाशक दिव्यध्वनिसे उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा–

हे श्रेणिक ! तुमने जो प्रश्न किया है वह बहुत ही उत्तम है। इसके सुननेसे भव्य सम्यक्चारित्र धारण कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। चंद्रमाको जिसप्रकार चकोर गाढदृष्टि लगाकर देखता है उसी प्रकार तुम भी विमलनाथ भगवानके चरित्रको मन लगाकर सुनो।

कुंडलाकार, कालसमुद्रसे वेष्टित, अनेक पद्म वैडूर्य आदि मणियोंकी खानोंसे सुशोभित, चारलाख योजन विस्तृत एक धातकी खंड नामका द्वीप है। उसकी पश्चिम दिशामें चौरासी हजार योजन ऊंचा एक मेरु पर्वत है। वह अपनी शोभासे आकाशको जानेका इच्छुक वा पृथ्वीका स्तनसरीखा मालूम पड़ता है अथवा मानो निराधार आकाशको ऊंचा उठा रखनेवाला सुवर्णका खंभा है। उस पर नन्दन आदि चारों वन हैं। देवांगनायें क्रीड़ा किया करती हैं और अर्हंतभगवानके अनेक मंदिरोंसे सुशोभित है। उस मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें नदीके दक्षिण तटपर महापद्म नामका एक देश है उसके तृतीय खंडमें मनोहर रम्यकावती देश है।

उस देशमें बड़े बड़े परकोटेदार नगर हैं, विद्वान लोगोंका वास है और सुवर्णके भवन हैं। वहां एक महापुर नामके नगरमें पद्मसेन नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम पद्मा था। उनके नाना तरहके भोग भोगते हुए कालक्रमसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम पद्मनाभ रक्खा। एक दिन प्रीतिंकर

नामक उद्यानमें समस्त जीवोंकी रक्षामें तत्पर सर्वगुप्त केवली पधारे। उनके प्रभावसे सब ऋतुओंके फल फूल वृक्षोंपर आ गए। यह देख वनमालीको बड़ा आश्चर्य हुआ और जब इसका कारण ढूंढने लगा तो उसे पल्यंकासनसे विराजमान सौम्यमूर्त्तिके धारक शुक्लध्यानमें मग्न, मृग व्याघ्रादि जंतुओंसे वेष्ठित, चंद्रमाके समान शांत, सूर्यके समान दैदीप्यमान, तपके समुद्र वे केवली दीख पडे। वह हर्षित हो यह समाचार देनेके लिए राजाके पास गया और फल फूल भेंट कर केवली भगवानके पधारनेके समाचार कहे। राजा पद्मसेन रानी और पुत्र तथा सामन्तों सहित भक्तिके साथ उन मुनिराजकी वंदनाके लिए गया और वहां अष्ट द्रव्योंसे उनकी पूजा वंदना कर बैठ गया। मुनिराज उसे भव्य कोमल परिणामी समझ धर्मका उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा—

राजन्! यह जीव अनादि निधन इस दुःखमय संसारमें भ्रमण करता रहता है। इसको पहिले तो मनुष्य पर्याय मिलना कठिन है, वह भी किसी तरह मिल जाय तो श्रेष्ठ कुलमें पैदा होना कठिन है और ये दोनों बात मिल जांय तो दयाप्रधान धर्मकी प्राप्ति होना अति कठिन है। देखो! इस धर्मके प्रभावसे राज्य, स्वर्ग, यश, सुखवीर्य, सुपुत्र, धन. सुंदर स्त्री, विद्वत्ता, चक्रवर्तिपना, श्रेष्ठता, सुंदरता, और तीर्थंकर पदवी तक प्राप्त हो जाती है और जो धर्मसे रहित होते हैं, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, पुत्र पैदा नहीं होते, गूंगे हो जाते हैं, स्त्री नहीं मिलती, वे बदसूरत, चोर, नीच, नौकर, भार ढोनेवाले और जन्म पर्यंत पीड़ित रहते हैं। वह धर्म श्रावक और मुनिके भेदसे दो प्रकारका है, जिसमें मुनिधर्मसे तो साक्षात् मोक्षकी प्राप्ति होती है और श्रावक धर्मके पालनेसे स्वर्गादि संपत्ति मिलती है। रात्रिमें भोजन करनेसे मांसभक्षणका दोष लगता है, इसलिए अहिंसाव्रत खंडित हो जाता है, अतः उसको कभी न करना चाहिए। जो रात्रिमें खाते हैं, उनके पूजा, स्नान, दान, जप, तप और तर्पण सब व्यर्थ जाते हैं। जब कि पक्षी तक रातको नहीं खाते, तो मनुष्योंको खाना ही न चाहिए। दिन अस्त होनेमें जब दो घड़ी बाकी रहती है, उससे पहले ही मनुष्य भोजन कर लेते हैं और जो इसके बाद खाते हैं, वे मांस खानेवाले

राक्षस हैं। जो मनुष्य तीन संध्याओंमें भोजन करनेवाले हैं, वे निर्धन, रोगी, अल्पायु और हीनवल होते हैं। पाप करनेवालोंकी भी निंदा न करनी चाहिए, कारण उससे भी पाप वंध होता है। निंदा करनेवाला, व्रत भंग करनेवाला, दूसरेके दोप ढूंढ़नेवाला, निद्रासे जगा देनेवाला और अंतराय डाल देनेवाला इस प्रकार पांच तरहके चांडाल होते हैं। धर्मस्थानमें पुरुप वा स्त्री राग द्वेपके वशीभूत हो किसीकी निंदा करते हैं, वे वल्गुली, उल्लू, बिल्ली आदि नीच पर्याय पाते हैं। इस असार संसारमें स्वार्थ ही सवको प्यारा है, स्त्री-पुत्रादिक नहीं, इसलिए जिससे स्वार्थ सिद्ध होता है, उसीसे लोग प्रेम करने लगते हैं। यह अकेला ही तो सुख-दुःख भोगता है और अकेला ही स्वर्ग-नर्कमें जाता है। पुण्य-पापमें स्त्री-पुत्र आदि किसीका भी विभाग नहीं है। नरकमें जाकर पांच प्रकारके दुःखोंको यह जीव अकेला ही भोगता है, एक क्षणके लिए भी वहां इसे कोई सुखी नहीं कर सकता। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी भावनाके विना किया हुआ समस्त तप विफल हो जाता है। जिस प्रकार अग्निसे वन जल जाता है, उसी प्रकार जन्मभर अति कठिन किया हुआ तप भी क्रोधसे भस्म हो जाता है। इस जीवने अनंत वार राजसुख भोगा है, तो भी संतोप नहीं होता। यह इन्द्रियभोग सर्पके समान कष्टकर और भयंकर है। इनके वशीभूत हो स्त्री, धन आदिमें मोह करनेवाले जीव तिर्यंच गतिमें पैदा होते हैं। जो लोग अनेक दिनों तक नाना तरहके इन्द्रियभोग भोगकर भी अंतमें विरक्त हो धर्माचरण नहीं करते, वे मूर्ख हैं। इस संसारमें मृत्यु सवकी होती है। देखो! काल आ जानेपर न चक्रवर्ती ही जीवित रहे और न देवता ही वच सके, इसलिए धर्मका अवश्य आचरण करो। राजन्! आगामी दो जन्मोंके वाद तुम निर्मल ज्ञानके धारक विमलनाथ तीर्थंकर होगे।

केवली भगवानका इस प्रकार उपदेश सुनकर पद्मसेनको तीर्थंकर हो जानेके समान ही आनंद हुआ। उसने वंधुओंको वंधनतुल्य समझा, स्त्रियोंको नरककी गली समझा, सवसे प्रधान अपने हितका लक्ष्यकर उसने पद्म-

नाभ पुत्रको तो राज्य दिया और स्वयं दीक्षित हो ग्यारह अंगोंको विशेष अर्थसहित पढ़ने लगा। मुनि पद्मसेन अनेक तरहके तप करते पृथ्वीपर विहार करने लगे। उन्होंने तीर्थंकर प्रकृतिके बंधकी कारण दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावना भायीं।

आठ अंग सहित, तीन मूढ़ता और आठ मदरहित जो सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता है, उसे दर्शनविशुद्धि कहते हैं ॥१॥ देव, शास्त्र, गुरुकी जो प्रत्यक्ष परोक्ष विनय करना है, उसका नाम विनयसंपन्नता है ॥ २ ॥ अठारह हजार भेदोंसे भिन्न शील व्रतमें जो मन-वचन-काय किसी भी प्रकारसे अतीचार नहीं लगने देना है, वह शील व्रतेष्वनतीचार भावना है ॥३॥ आत्माको नित्य समझ जो सदा श्रुतका पाठ करता है, उसके अभीक्ष्णज्ञानोपयोग चौथी भावना होती है ॥ ४ ॥ स्त्री, पुत्र, धन, धान्यादिकमें अनित्यता समझ ममत्व न करना संवेग है ॥५॥ अपनी शक्तिके अनुसार जो महापुरुष सद्बुद्धिसे दान देता है, उसे शक्तितस्त्याग छठी भावना होती है ॥६॥ जिसके आचरण करनेसे मन बाह्य प्रवृत्तिको छोड़ आत्मस्वरूपके चिंतवनमें लीन हो, वही उत्तम तप है और उसकी शक्ति न छिपाकर आचरण करना शक्तिस्तप है ॥७॥ साधुओंके धर्मध्यानमें विघ्न न आने देनेका प्रयत्न करना साधुसमाधि है ॥८॥ दश प्रकारके साधुओंकी सेवा-टहल करना वैयावृत्य है ॥ ९ ॥ अनंत गुणोंके भंडार, सर्वज्ञाता अर्हंत भगवानकी नाना स्तोत्रोंसे भक्ति करना अर्हद् भक्ति है ॥ १० छत्तीस गुण सहित तपस्वी ध्यानी आचार्यकी भक्ति करना आचार्य भक्ति है ॥११॥ अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता अंग-पाठी मुनियोंकी भक्ति करना बहु-श्रुतभक्ति है ॥ १२ ॥ सिद्धान्तके शास्त्रोंके वाक्योंको सर्वथा सत्य मानकर जो ज्ञानी पूजता है, असमयमें उन्हें नहीं पढ़ता है और उनमें विश्वास रखता है, उसके प्रवचन भक्ति होती है ॥१३॥ छह आवश्यकोंकी विधिका उलंघन न कर उन्हें समयानुसार करना आवश्यकापरिहाणि है ॥ १४ ॥ जैनधर्मकी प्रभावना संसारमें करोड़ों उपायोंसे जो करना है, वह मार्गप्रभावना है ॥१५॥ व्रती, ब्रह्मचारी, तपस्वी, दानी

आदि सहधर्मी भाइयोंके साथ जो उत्कृष्ट प्रेम करना है, वह वात्सल्य है ॥ १६ ॥

तपस्वी पद्मसेनने इस प्रकार सोलह श्रेष्ठ भावनाओंको निरतिचार भाकर तीर्थंकर प्रकृतिका बंध बांधा। वे एक मास, दो मास, चार मासके एक-एक साथ उपवास करने लगे। हेमंत ऋतुमें वे तालाव या नदी किनारे तप तपते थे, गर्मीमें पर्वतपर सूर्यकी तरफ मुंहकर ध्यान लगाते थे, वे राग-द्वेषसे रहित थे, निद्रा-आलस्यके त्यागी थे, मौनी थे, शुभ आत्माके ध्यानमें लीन थे और मेरुके समान स्थिर थे। उनकी शांत मुद्रा देखकर परस्पर-विरोधी भी जंगलके व्याघ्र सर्प आदि जन्तु शांत हो सेवा करने लगते थे। उनके कानोंमें छोटे-छोटे पक्षियों ने घोंसले वना लिये थे। केशोंसे सारा शरीर ढँक गया था। जिन महात्माओंने स्त्री-पुत्र आदिसे विरक्त हो राग द्वेषको छोड़ वनमें जा तप धारण कर लिया वे ही धन्य हैं।

इस प्रकार मुनि पद्मसेन अति दुर्धर तप तपकर उच्चैर्गोत्र शुभ आयु और साता वेदनीय कर्मके प्रतापसे आयुके अंतमें सहस्रार नामक वारहवें स्वर्गमें उत्पन्न हुए। वहां उनका शरीर अंतर्मुहूर्त मात्रमें यौवनसे भूषित हो गया। उस देवको संपुट शिलासे उठा हुआ देखकर नियोगिनी देवांगनायें आईं और कहा---हे स्वामिन् ! तुमने कौनसा पुण्यका काम किया, जिससे तुम यहां आकर उत्पन्न हुए? क्या तुमने जिनेंद्र भगवानके चरणोंकी पूजा की थी ? क्या चिरकाल तक छह कायके जीवोंकी रक्षा करनेवाला तप तपा था? क्या चार तरहका पात्रोंके लिए दान दिया था अथवा तेरह तरहका चारित्र पाला था ? इस प्रकार नाना तरहसे स्तुति करने लगीं। देवांगनाओंसे वेष्टित अपनेको देखकर वह देव विचारने लगा---यह मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित, मणियोंसे खचित बारीक कारीगरीसे युक्त विमान क्या है ? नाना ऋद्धियोंसे युक्त यह कौनसा स्थान है, और यह सुन्दर स्त्रियां कौन हैं तथा मैं ही कौन हूं, कहांसे आया हूं ? इस प्रकारका संशय उठनेपर उसके अवधिज्ञान प्रगट हुआ और उसके प्रभावसे सब जानकर निर्भय हो आनंदित हुआ। इसके वाद देवांगनाओंने उसका शृंगार करन

प्रारंभ किया। कोई तो मुकुट पहनाने लगीं, किसीने वस्त्र पहिनाये, किसीने बाजू बांधे, किसीने गलेमें हार डाले किसीने चंदनका लेप किया किसीने तिलक मस्तकपर लगाया किसीने कमरमें करधनी पहिनायी। किसी देवांगनाने उसे दर्पण दिखलाया और किसीने चमर ढोरे। इस प्रकार स्वर्गकी संपत्ति देखकर उस पद्मसेनके जीवने मनमें विचारा कि यह सब मेरे धर्माचरणका ही फल है। इस प्रकार अपने मनमें सोचकर वह मेरु तथा नंदीश्वरादिकी वंदनाके लिए गया। वह देव कभी तो असंख्य द्वीप समुद्रोंकी शैल करता, कभी सुरांगनाओंके साथ पर्वतोंपर क्रीड़ा करता और कभी देवांगनाओंके साथ नाना तरहके भोग भोगता। उस देवकी आयु अठारह सागर थी, एक धनुष ऊंचा शरीर था, द्रव्य शुक्ल लेश्या थी तथा भाव उत्कृष्ट पद्मलेश्या एवं जघन्य शुक्ल लेश्या थी। उसकी कामवेदना देवांगनाओंके केवल शब्द सुनने मात्रसे मिट जाती थी, नीचे चौथे नरक तक और ऊपर अपने विमानके ध्वज दंड तक अवधिज्ञानसे देख सकता था। यहीं तक उसके विक्रिया थी, अणिमा महिमा आदि ऋद्धियोंका धारक था, अठारह हजार वर्ष बाद मनसे आहार लेता था, नौ महीने बीतनेपर एक बार श्वांस लेता था, उसका शरीर सात धातुसे रहित परम सुंदर था और सदा गीत नृत्य आदि आमोद प्रमोद की सामग्रीमें अनुरक्त रहता था। इस प्रकार वह देव नाना तरहके भोगोंसे रमणीक स्वर्गलक्ष्मीको भोगता था सो ठीक ही है, धर्मसे किस चीजकी प्राप्ति नहीं होती है।

धर्मके प्रभावसे मनोहर स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र, बड़ा भारी राज्य, यश, कौशल, गांभीर्य, स्वर्गके सुख इंद्रपना बुद्धिमत्ता वक्तृत्व चक्रवर्तिपना और कहां तक कहें तीर्थंकरपना तक मिल जाता है तब भला अन्य क्या २ गुण नहीं प्राप्त नहीं हो सकते।

इस प्रकार भट्टारक श्री रत्नभूषणाम्नायके अलङ्कार कवि ब्रह्म कृष्णदास विरचित संस्कृत विमलपुराणकी टेहू (आगरा) निवासी पं० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिन्दी वचनिकामें पद्मसेन राजाके जीव सहस्रारेन्द्रके सुखका वर्णन करनेवाला दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

तीसरा-सर्ग

काश्यप गोत्र प्रधान जे, गैरिक वर्ण समान ;
पूजों उन विमलेशके, पाद पद्म धरि ध्यान ।

अथानंतर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मेरुकी दक्षिण दिशामें कंपिला नामकी एक नगरी है। वहांका राजा इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्मा था और उसकी महारानी परमसुंदरी गुणवती जयश्यामा नामक थी और वे दोनों यथेष्ट भोग भोगते थे।

एक दिन इंद्रने कुबेरको बुलाकर कहा कि तेरहवें तीर्थंकर श्रीविमलनाथ भगवान कंपिलामें आजसे छह मास बाद उत्पन्न होंगे अतएव तुमको उस नगरीकी शोभा एवं राजाके घरमें रत्नोंकी वर्षा अभीसे प्रारम्भ कर देना चाहिए। कुवेरने इंद्रकी आज्ञानुसार भगवानके गर्भमें आनेके छह मास पहिले ही रत्नोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी।

एक दिन महारानी जयश्यामा कोमल सेजपर सो रही थी कि रात्रिके अंतिम प्रहरमें उसे सोलह स्वप्न दिखाई दिये। सबसे पहले उसने पूर्ण चंद्रमाके समान शुभ्र कैलाशके समान उन्नत मदसे सुगंधित गंडस्थलवाले हाथीको देखा। दूसरे मोटी ककुद और छोटी ग्रीवावाले चपल छोटे सींगके धारक श्वेतकाय बैलको देख प्रसन्न हुई। तीसरे स्वप्नमें निर्भय बलवान सुंदर सिंहको चौथेमें कमल लिये कमलोंपर विराजमान लक्ष्मीको पांचवेंमें कुंद मदारादि पुष्पोंसे गुथी हुई दो मालाओंको छठेमें अंधकारके नाशक शीतल सौम्य मनोहर निष्कलंक चंद्रमाको सातवेंमें तेजस्वी लाल उगते सूर्यको आठवेंमें जलमें किलोल करती दो मछलियोंको नवेंमें कमलोंसे आच्छादित जलके भरे दो घड़ोंको दशवेंमें फूले हुए कमलोंसे सुशोभित जलसे पूर्ण विशाल तालावको ग्यारहवेंमें हिलोरें लेते हुए

शब्दायमान समुद्रको बारहवेंमें रत्नोंसे मिश्रित सोनेके बने हुए सिंहासनको तेरहवेंमें घंटरियोंके शब्दोंसे मनोहर आकाशगामी विमानको चौदहवेंमें महादेदीप्यमान नागकुमारोंसे युक्त नागलोकको पंद्रहवेंमें प्रकाशमान रत्नोंके ढेरको और सोलहवेंमें स्वप्नमें विना धुएँके जलती हुई अग्निको देखा। इसके बाद उस महारानीने उन्नतकाय एक सुंदर गजको अपने मुखमें प्रवेश करते मालुम किया।

प्रातःकाल होनेसे महारानी जाग गई। सेजसे उठकर स्नानकर उसने सामायिक की और बंदीगणों द्वारा शुभके सूचक बजाये गये बाजोंको सुनकर प्रसन्न होती हुई वह महाराजके पास स्वप्नोंका फल पूछनेके लिए सभामें गई। महारानीको आते देख महाराजने प्रसन्नता प्रकट की और अपने बायीं तरफ उसे आदरसे बैठा लिया। पतिके सत्कारसे हर्षायमान उस रानीने रात्रिको देखे हुए सब स्वप्न कह सुनाये। उत्तरमें महाराजने कहा--पहिले स्वप्नमें तुमने जो श्वेत हाथी देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा बैल देखनेसे वह समस्त कुटुम्बको आनंद देनेवाला और सर्व भार वहन करनेमें चतुर होगा, सिंह देखनेसे तीन लोकको जीतनेवाला पराक्रमी, लक्ष्मी देखनेसे त्रैलोक्यके लक्ष्मीका भोक्ता, माला देखनेसे कोमल परिणामी शुक्ल लेश्याका धारक, चंद्रमा देखनेसे शांत परम विद्वान्, सूर्य देखनेसे अपने प्रतापसे समस्त संसारको व्याप्त करनेवाला महापराक्रमी, मछली देखनेसे विशाल राज्यका भोक्ता, दो घड़े देखनेसे मेरुपर स्नान करनेवाला, तालाब देखनेसे समस्त शुभ लक्षणोंसे शोभायमान, समुद्र देखनेसे धीर गंभीर, सिंहासन देखनेसे समस्त मनुष्योंसे पूजित, विमान देखनेसे स्वर्गलोकसे अवतीर्ण, नागभवन देखनेसे नागदेवोंसे पूजित, रत्नराशि देखनेसे कोटि सूर्यसे भी अधिक प्रभावाला और धूम अग्नि देखनेसे कर्मकाष्ठको जलाकर शुद्ध चिन्मय दशाको प्राप्त करनेवाला होगा। इस प्रकार महाराजकेसे स्वप्न फल सुनकर महारानीको परम आनंद हुआ और वह हर्षित हो घर गई।

अथानंतर ज्येष्ठकृष्णा दशमीके दिन, जब कि उत्तरा भाद्रपद नामका शुभ नक्षत्र था, वह पद्मसेनका जीव

सहस्रार स्वर्गसे चयकर रानी जयश्यामाके गर्भमें आया। उस समय देवोंके आसन कंपायमान हुए। उन्होंने अपने अवधिज्ञानसे भगवानका गर्भ कल्याणक जाना तो वे आनंदित हो कंपिला आये और उत्सव मनाकर चले गये। महारानीकी सेवाके लिए छप्पन कुमारिकाएँ इंद्रने नियुक्त कर दीं और वे जगतको आनंद देनेवाले जिनेंद्र भगवानकी माताको सेवने लगीं। उनमें से किसीने तो कपड़े व गहने पहिनाये, किसीने सुगंधित उबटनादि लगाकर स्नानादि कराया, कोई पैर दावने लगी, किसीने झूलेपर बिठाकर झोटे दिये, किसीने नाना तरहके व्यंजन बनाकर खिलाये, कोई हावभावसे मनोहर गीत-नृत्य करने लगी, कोई विशाल दर्पण दिखलाने लगी और कोई इस प्रकार गूढ़ प्रश्न पूछने लगी---माता! इस संसारमें क्या ग्रहण करने लायक है। माताने कहा---गुरुओंके वचन। प्रश्न--गुरु कौन है। उत्तर---समस्त जीवोंके रक्षक हित मित वचन बोलनेवाले तत्त्वज्ञानी। प्रश्न---क्या करने लायक है। उत्तर--संसारका नाश। प्रश्न--मोक्षरूपी वृक्षका बीज क्या है। उत्तर--सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र। प्रश्न---हितकर क्या है। उत्तर---स्वर्ग मोक्ष देनेवाला धर्म। प्रश्न---पवित्र कौन है। उत्तर---जिसका मन पवित्र है। प्रश्न---पंडित कौन है। उत्तर---जो हिताहितका विवेकी है। प्रश्न---विष क्या है। उत्तर---गुरुओंका अनादर। प्रश्न---सार क्या है। उत्तर---श्रेष्ठ कुल। मदिरा क्या है? स्नेह। शत्रु कौन है? इंद्रिय भोग। निंदनीय क्या है? याचना। विषकी बेलि कौन है? तृष्णा। भयंकर क्या है? मौत। अंधा कौन है? रागी। गहन कौन है? स्त्रीका चरित्र। शूरवीर कौन है, स्त्रियोंका त्यागी और क्रोधरहित दाता। गौरव किसमें है, नहीं मांगनेमें। दरिद्रता क्या है, महा लोभीपना। जीवित कौन है, महायशस्वी। जागता कौन है, जो आत्मध्यानी है। सोता कौन है, जो मूर्ख है। कमलपत्रके जल समान विनाशीक क्या है, यौवन और धन। चंद्रमाके समान सबका प्यारा कौन है, निंदासे रहित सज्जन। नरक क्या है, पराधीनता। सुख किसमें है, परिग्रहोंके त्यागमें। भूषण क्या है, ब्रह्मचर्य और सत्यवादिता। मित्र कौन है,

जो हितका उपदेश दे। विना कानके कौन है? जो शास्त्रोंको नहीं सुनता। मरण क्या है? जन्मभर दुःख देने-
वाली मूर्खता। किसका ध्यान करना चाहिए? संसारके कल्याण करनेवाले, शुद्ध आतमस्वरूप श्रीवृषभदेवका।
प्रधान क्या है? अभयदान और यथाशक्ति तप करना।

इस प्रकार हजारों प्रश्नोंके यथोचित उत्तर पाकर कुमारिकायें प्रसन्नताके साथ जिनमाताकी सेवा करने
लगीं। गर्भमें सन्तान आ जानेसे स्त्रियोंके उदरकी वृद्धि क्रमशः होने लगती है परन्तु माताके यह बात न हुई।
तीर्थंकर पुत्रके पुण्य प्रभावसे पेटकी तीन वलियोंका भी भंग न हुआ और न उसको थकावट ही मालूम होती
थी। माताको भोजन पान भी रुचिकर लगता था, चलने फिरनेमें भी किसी प्रकारकी तकलीफ न होती थी और
रातको नींद भी अच्छी तरह आती थी। इसप्रकार जब गर्भके दिन पूर्ण हो गये तो माघ सुदी चौथके दिन उस
महारानी जयश्यामाने मति श्रुत अवधि तीन ज्ञानके धारक, तेजके पुंज सुलक्षण परम पुण्यवान पुत्रको जन्म
दिया, बस उनके जन्म लेते ही स्वर्गमें घंटे बजने लगे, ज्योतिषियोंके विमानोंमें सिंहनाद होने लगा, व्यन्तरों
के यहां भेरीका शब्द सुनाई पड़ने लगा और भवनवासियोंके घरमें शंख बिना बजाये बजने लगे। अवधिज्ञानसे
देवोंने जब भगवान विमलनाथका जन्म जाना तो वे सब अभिषेक करनेके लिये उत्सुक हुये। इन्द्रकी आज्ञासे
कुबेरने एक लाख योजनका सौ सूंडवाला हाथी बनाया। प्रत्येक सूंडपर आठ दांत थे, प्रत्येक दांतपर एक
तालाब था, प्रति सरोवरमें पचीस कमलिनी (कमलकी वेल), प्रति कमलिनीपर एक सौ पचीस २ कमल थे,
प्रति कमलकी एक सौ आठ पांखुड़ी थीं और प्रति पांखुडीपर एक एक देवांगना नृत्य करती थी इसप्रकार कुल
(१।१००। ८।२५।१२५।१०८) देवांगनाएं नाच रही थीं। उस हाथीके कुक्षि भागपर तेतीस सभायें बनायी गयीं
थीं और वहां तेतीस करोड़ देवोंको रक्खा गया था। इसप्रकार अद्भुत शोभाके धारक उस ऐरावत पर सौधर्म
स्वर्गका इंद्र अपनी इंद्राणी सहित बैठा और स्वर्गसे श्री जिनेन्द्र भगवानका जन्माभिषेकोत्सव मनानेके लिये चल

दिया। जब नगर समीप आ गया तो इन्द्रने हाथीको तो आकाशमें ही रक्खा और इंद्राणीको बालक भगवानके लानेके लिये भेज दिया। इंद्राणीने प्रसूति घरमें जा माताको मायासे सुला दिया और स्वयं नमस्कार कर भगवानको इंद्रके पास ले आई। इंद्रने उन तेजस्वी बालकको भक्तिभावसे नमस्कार किया और सुमेरुपर अभिषेक करनेके लिये चल पड़ा। वहां पांडुक वनमें अर्ध चन्द्राकार सौ योजन लम्बी पचास योजन चौड़ी आठ योजन मोटी पांडुक शिला और उसपर तीन सिंहासन हैं। सौधर्मेंद्रने वहीं पर पूर्व दिशाकी तरफ मुंहकर श्री जिनेंद्रको विराजमान किया। देवगण आठ योजन गहरे एक हजार आठ सुवर्णमयी रत्नजड़ित घडोंको हाथोंमें ले क्षीर समुद्रसे जल लाने लगे। उस समय इंद्रने अपनी हजार बांहें बना लीं, और उनसे कलश ढार ढारकर भगवानका अभिषेक करने लगा। उस समय देवगणोंकी जय ध्वनि, वादित्रोंके अगाध शब्द, और जलका प्रवाह अपार शोभा दिखला रहे थे। इंद्रके अभिषेक कर चुकनेके बाद बचे हुए आठ कलशोंसे अन्य देवोंने भगवानका अभिषेक किया और उसके बाद इंद्राणीने उनको भूषणादिसे सुसज्जित किया। उनके कानोंमें कुंडल पहिनाये, कमरमें करधनी, शिरपर मुकुट, बाहुओंमें बाजू और शरीरपर उत्तम वस्त्र पहिनाये। इंद्रने इनका नाम विमलवाहन रक्खा और भक्तिपूर्वक स्तुति कर बोला--आप तीन लोकके स्वामी, महाज्ञानी, गुणोंके समुद्र, धर्ममूर्ति, शत्रुओंके जीतनेवाले, मोक्षकल्याणके दाता, ज्योतिस्वरूप, सदानंदात्मा, अनादि निधन, मुक्ति स्त्रीके पति, अज्ञानके नाशक, योगियोंको भी अचिंत्य, नाशरहित और सब प्रकारके भयसे रहित हैं। आप स्याद्वादके उपदेशक, समस्त जीवोंके वंदनीय, जन्मसे ही तीन ज्ञानके धारक दानी ध्यानी हैं और भव्य जीवोंकी संसारपीड़ा मिटानेके लिए परम औषधिस्वरूप हैं। यदि समस्त आकाशको कागज बनावें, सुमेरुको लेखनी, समुद्रोंके जलोंको स्याही और लिखनेवाले असंख्य बृहस्पति हों, तो भी आपके गुण लिखे नहीं जा सकते।

इसके बाद उन भगवानको ऐरावतपर चढ़ाकर वह कंपिला नगर आया और वहां देव-देवांगनाओंकी जय-

ध्वनिके साथ भगवानके माता-पिताको अभिषेक कर उन्हें गोदमें दे दिया। नगरमें बड़ी भक्तिके साथ इन्द्रने आनंदोत्सव मनाया, कुंडलाकार पंक्ति बांधकर अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, यहां तक कि स्वयं इंद्र इंद्राणी भी भक्ति-भावसे प्रेरित हो लय तालके साथ नृत्य करने लगे। माता-पिताओंको स्वर्गीय वस्त्राभूषणोंसे सत्कृतकर उनकी प्रशंसा करते हुए इंद्रने वयके योग्य देवोंको भगवानकी सेवामें छोड़ा और स्वयं समस्त मंडलीके साथ स्वर्गको चला आया।

इसके बाद राजाने भी अपने नगरमें पुत्र-जन्मकी खुशी मनाई, समस्त नगर ध्वजाओंसे सजाया, याचकोंको मुँहमांगा दान दिया और तीर्थंकर पुत्र होनेसे अपने जन्मको धन्य माना।

जिनेंद्र विमलवाहन दूजके चंद्रमाकी तरह दिन-दिन बिना किसी प्रकारकी विघ्न-बाधाके हर्षके साथ बढ़ने लगे। उनके साथ उसी प्रकारकी उम्र और शरीर बना बनाकर देवगण क्रीड़ा करने लगे। वासुपूज्य भगवानका तीर्थ तीस सागर तक चला, इसके बाद साठ लाख वर्ष कम एक पल्य तक धर्मकी विच्छित्ति रही, और उसके बाद ये विमलनाथ स्वामी हुए। इनकी आयु साठ लाख वर्षकी थी, साठ धनुष ऊंचा शरीर था, तपाये सोनेकी-सी उनकी कांति थी। जब पंद्रह लाख वर्ष इनके कुमारकालके बीत गये, तो इनका राज्याभिषेक हुआ और समस्त संसारको वश कर लिया। इनके सरस्वती तो साथ ही उत्पन्न हुई थी, लक्ष्मी जन्म लेते साथ ही आ गई और प्रताप, धीर वीरता आदि गुण आकर सेवा करने लगे। सत्यादिक गुण तो इनमें स्वयं ही सिद्ध थे। इनको संसारके समस्त प्रसिद्ध व्यक्ति इंद्र, धरणींद्र, खगेंद्र, राजा, महाराजा आदि जब अपना गुरु मान नमस्कार करते थे, तब अन्य गुणोंकी वर्णना करना तो व्यर्थ ही है। इस प्रकार तीस लाख वर्ष तक उन भगवानने संसारके अनेक भोग भोगे थे और इतना समय भी एक क्षणके समान उनका निकल गया था। सो ठीक ही है,

धर्मके प्रभावसे कीर्ति, लक्ष्मी, सुत, स्त्री, राज्य, स्वर्ग आदि सब सुखोंकी प्राप्ति होती है--यहां तक कि मोक्ष भी मिल जाती है, तब औरकी तो बात ही क्या है।

इस प्रकार श्रीमद् भट्टारक श्री ज्ञानभूषणकी आम्नायके भूषण श्रीब्रह्म कृष्णदास विरचित संस्कृत विमलपुराणकी टेहू (आगरा) निवासी पं० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिन्दी वचनिकामें भगवानके जन्माभिषेकोत्सवको वर्णन करनेवाला तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

चौथा सर्ग

कोटि चंद्रसम सौम्य जो, जगपालक वृषनाथ।
शिव सुखदायक आदि जिन, सदा नमाऊँ माथ।

एक दिन श्रीविमलवाहन भगवान सैन्यके साथ वनमें क्रीड़ा करनेके लिए गये थे कि वहां एक तालावमें उन्हें चित्तको सुखदायक चंद्रमाके समान श्वेत बर्फ (हिमसमूह) दीख पड़ी। इसके थोड़ी ही देर बाद पिघलकर वह पानी हो गई। बस! भगवान् वैराग्यमें लीन हो सोचने लगे---इस बड़े भारी सैन्य, विशाल विभूति, हृष्ट-पुष्ट शरीर, प्रिय लगनेवाले कुटुंब, स्त्री, पुत्र आदिसे मेरा क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार बिजली क्षण-भरमें चमककर छिप जाती है, उसी प्रकार अल्पकाल तक चमकनेवाले समस्त संपत्ति धन यौवन शरीर आदि इस हिमानी (बर्फ) के समान क्षण-भरमें नष्ट हो जानेवाले हैं। माता-पिताके किये पापोंको न तो पुत्र भोगता है और न पुत्रके किये गये पापोंको पिता ही भोगता है। सब अपने-अपने कर्मोंका फल आप पाते हैं और उससे नरकादिके दुःख भोगते हैं। हा! पशुके समान इन विषय भोगोंको भोगते २ मेरी आयुके तीन भाग तो यों ही निकल गये, इनमें सद्धर्मका कुछ भी सेवन नहीं किया। जिन लोगोंने धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको यथेष्ट नहीं पाला और जिनको अपनी

इसलिए हे भाई ! जो बात असंभव-सी दीख पड़े, उसका भला-बुरा फल अवश्य विचारना चाहिए। इसीलिए मुझे चिंता हो गई है। नारायणकी यह बात सुन मालीने कहा—महाराज, आपके पुण्य-प्रतापसे श्री १००८ विमलनाथ भगवानका समवसरण मदनोद्यानमें आया है, उनके ही प्रभावसे छहों ऋतुओंकी शोभा एक साथ दीखने लगी है। अब तो स्वयंभूको बड़ा आनंद हुआ। वह परोक्ष विनय करनेके लिए उठा और सात पैंड चलकर भगवानको नमस्कार किया, इसके बाद हर्षित हो उसने अपने समस्त वस्त्राभूषण उतार कर मालीको दे दिये।

नारायण स्वयंभूने भगवानके आगमन और उनकी वंदना करने चलनेके लिए नगरमें डोंढी पिटवायी और स्वयं अपने भाई धर्म बलभद्र सहित सजधज कर नगरके बाहिर हो चला। दूरसे सुवर्णमयी मानस्तम्भोंको देखकर उसने राज चिन्ह सब दूर कर दिए। विनयावनत हो समवशरणमें प्रवेश किया और उसके भीतरकी अद्‌भुत शोभाको देखते देखते वह जिनेंद्र भगवानके सिंहासनके समीप जा पहुंचा। तीन प्रदक्षिणा दीं और भाई धर्मके साथ नाना तरहसे स्तुति कर जल आदि आठ द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की।

इसके बाद वे दोनों भाई मनुष्योंके कोठेमें बैठ कर श्रीजिनेंद्रका उपदेश सुनने लगे। उसके बाद नारायणने नमस्कार कर पूछा—हे जगद्बंधु स्वामिन् ! आप समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानते हैं इसलिए कहिए कि यह जीव नाना इंद्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले स्वर्गमें तो किस कारणसे जाता है और अनन्त दुःखोंके समुद्र नरकमें किस कारणसे ? तिर्यंच योनिमें क्योंकर जन्म लेता है और मनुष्यजन्म कैसे पाता है ? स्त्री वा पुरुष पर्याय भी कैसे मिलती है। इसके सिवा थोड़ी, बहुत आयु, भोगरहित वा सहित अवस्था, सौभाग्य वा दुर्भाग्य, बुद्धिमत्ता वा मूर्खता, धीरता वा कायरता, अमीरी वा गरीबी, सुपुत्र वा कुपुत्र, अंधे वा बहिरे, रोगी वा नीरोग, परोपकारी वा कृतघ्नी, गूंगा वा पंगु, सुरूप वा कुरूप, पीड़ासहित वा रहित, पंचेंद्रिय वा एकेंद्रियादि,

और उसके बीच अचिंत्य विभूतिसे युक्त सिंहासन रचा जिसपर केवलज्ञानी भगवान् विराजमान हुए। उनकी भक्तिमें लगे हुए देवोंके जय-जय शब्दोंसे और दुंदुभिके गंभीर नादसे मालीको बड़ा आश्चर्य हुआ और जब उसने सब ऋतुके फल-फूल आये देखे तो आनंदकी सीमा न रही। उसने इसकी सूचना राजाको देनी उचित समझी और वह सब तरहके फल-फूल ले राजा स्वयंभूके पास पहुंचा। स्वयंभू बेऋतुके फल देख बहुत ही चिंतित हुआ और उसने मनमें विचारा कि पहिलेके आचार्योंने असमयमें फल-फूल आनेका फल राजाका अनिष्ट होना कहा है। भाईको इस प्रकार चिंतित देख बलभद्रने उसका कारण पूछा, उत्तरमें स्वयंभूने कहा—

किष्किंधा नगरमें सुंदर नामका विशाल ऐश्वर्यवाला राजा था, उसके कमला रानीसे उत्पन्न परम सुंदरी लड़की थी। उसने मंदार जातिके फूलोंकी मालावाले पुरुषके साथ विवाह करनेकी प्रतिज्ञा कर ली। यह सुन राजाको बड़ी चिंता हुई। उसनें सोचा कि यह लड़की कैसी मूर्ख है। अरे जिस मंदारके फूलोंकी माला स्वर्गमें ही मिल सकती है और देवगण जिसे पहिनते हैं, वह भला मनुष्योंको कैसे प्राप्त होगी! इसलिए स्वयंवर कर देना ही अच्छा है, क्योंकि उसके विना सुलभतासे वर नहीं मिल सकता। इसके बाद स्वयंवरके समाचार लिख राजाने सब जगह पत्र भिजवाये और उन्हें पढ़कर स्वयंवरार्थी राजपुत्र एकत्र होने लगे। निश्चित दिन प्रातः काल स्वयंवर मंडपमें जब सब राजपुत्र अपने-अपने स्थानपर बैठ गये, तो धायके कंधेपर हाथ रखे हुए कन्या वर पसन्द करनेके लिए आई। कंचुकीने सबका परिचय दिया, परंतु किसीके गलेमें मंदार पुष्पोंकी माला न होनेसे वह बिना वरण किये ही रणवासमें वापस लौट आई। एक दिन सब राजोंकी सभा लग रही थी, कन्या भी वहां थी कि इतनेमें एक शरीरमें राख लपेटे, नग्न, जटाधारी गलेमें हड्डियोंकी माला डाले आर शंख चक्र लिए एक पुरुष आया और पद्मासन लगाकर सभामें बैठ गया। इसी समयमें मणिचूड़ नामक एक इंद्र नंदीश्वर द्वीपकी वंदनाकर लौट रहा था कि नीचे उस घटनाको देख उसकी देवांगनाने सब वृत्तांत

पूछा। उत्तरमें उसमें कहा कि—यह एक स्वयंवर मंडप है। कन्या मंदारपुष्पोंकी माला किसीके गलेमें न देखकर नहीं वरण कर रही है पतिसे यह समाचार जान हँसीसे इद्राणीने मणिचूड़के गलेकी माला उतार कपालीके सामने डाल दी। कापालिक उस मालाको पहिनकर मौनसे बैठ गया कन्या उसे गुप्त भेपधारी समझ वरने आई परन्तु पिता धाय तथा राजोंने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया। यह देख कापालिक क्रोधके आवेशमें आ श्मशान में चला गया और मृत मनुष्यके माथे पर उन राजोंको वश करनेके लिये वज्रश्रृंखलिका नामक विद्या साधने लगा अनुष्ठानसमाप्तिके दिन आधी रातके समय वह विद्या भयानक शब्द करती बीस मुंह छत्तीस हाथ बना कर आई और उसे भय दिखाने लगी। कापालिक जब किसी प्रकार चलित न हुआ, तो वह प्रसन्न हो वर मांगनेके लिए कहने लगी। उत्तरमें कापालिक बोला—देवि! तुम्हारी यही इच्छा है और मुझपर प्रसन्न हो गई हो, तो मुझे दो यक्ष योद्धाओंको प्रदान करनेका वर दीजिये, जिससे मैं रणमें किसीसे न जीता जा सकूं और सदा मैं ही विजयी होऊं। कापालिककी प्रार्थना स्वीकार कर देवी अंतर्हित हो गई और वह अगणित राजपुत्रोंसे सुशोभित स्वयंवर मंडपमें आया। जब नाना तरहके बाजे बजने लगे और मंगल-गीत गाना प्रारंभ हो गया, तो कन्या धायके साथ वहां आई और मुकुट आदि अलंकारोंसे शोभित राजाओंको देखने लगी। इतनेमें उसकी दृष्टि कपालीपर पड़ी। अपनी प्रतिज्ञानुसार मंदार पुष्पोंकी मालासे युक्त उस कपालीको ज्यों ही वरना चाहती थी कि राजा लोगोंने रोक दिया और 'मारो मारो इस दुष्ट निर्दयी कपालीको' इस प्रकार कोलाहल करने लगे। अब तो कपालीको भी गुस्सा आ गया, वह उनसे युद्ध करने लगा। उसके शंख बजानेपर पूर्व सिद्ध दोनों यक्ष भी आ धमके और प्रलयकालके समान राजोंको कष्ट होने लगा। उस कपालीने अपनी विद्याके बलसे वे समस्त किंधाधिप आदि राजा बांध लिये, परंतु इसी बीचमें आकाश-मार्गसे जाते हुए किसी अन्य दुष्टने वह कन्या ली। सो ठीक ही है, दुर्जन पुरुष क्या २ उपद्रव नहीं करते।

इसलिए हे भाई ! जो बात असंभव-सी दीख पड़े, उसका भला-बुरा फल अवश्य विचारना चाहिए। इसीलिए मुझे चिंता हो गई है। नारायणकी यह बात सुन मालीने कहा—महाराज, आपके पुण्य-प्रतापसे श्री १००८ विमलनाथ भगवानका समवसरण मदनोद्यानमें आया है, उनके ही प्रभावसे छहों ऋतुओंकी शोभा एक साथ दीखने लगी है। अब तो स्वयंभूको बड़ा आनंद हुआ। वह परोक्ष विनय करनेके लिए उठा और सात पैंड चलकर भगवानको नमस्कार किया, इसके बाद हर्षित हो उसने अपने समस्त वस्त्राभूषण उतार कर मालीको दे दिये।

नारायण स्वयंभूने भगवानके आगमन और उनकी वंदना करने चलनेके लिए नगरमें डोंढी पिटवायी और स्वयं अपने भाई धर्म बलभद्र सहित सजधज कर नगरके बाहिर हो चला। दूरसे सुवर्णमयी मानस्तम्भोंको देखकर उसने राज चिन्ह सब दूर कर दिए। विनयावनत हो समवशरणमें प्रवेश किया और उसके भीतरकी अद्‌भुत शोभाको देखते देखते वह जिनेंद्र भगवानके सिंहासनके समीप जा पहुंचा। तीन प्रदक्षिणा दीं और भाई धर्मके साथ नाना तरहसे स्तुति कर जल आदि आठ द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की।

इसके बाद वे दोनों भाई मनुष्योंके कोठेमें बैठ कर श्रीजिनेंद्रका उपदेश सुनने लगे। उसके बाद नारायणने नमस्कार कर पूछा—हे जगद्बंधु स्वामिन् ! आप समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानते हैं इसलिए कहिए कि यह जीव नाना इंद्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले स्वर्गमें तो किस कारणसे जाता है और अनन्त दुःखोंके समुद्र नरकमें किस कारणसे ? तिर्यंच योनिमें क्योंकर जन्म लेता है और मनुष्यजन्म कैसे पाता है ? स्त्री वा पुरुष पर्याय भी कैसे मिलती है। इसके सिवा थोड़ी, बहुत आयु, भोगरहित वा सहित अवस्था, सौभाग्य वा दुर्भाग्य, बुद्धिमत्ता वा मूर्खता, धीरता वा कायरता, अमीरी वा गरीबी, सुपुत्र वा कुपुत्र, अंधे वा बहिरे, रोगी वा नीरोग, परोपकारी वा कृतघ्नी, गूंगा वा पंगु, सुरूप वा कुरूप, पीड़ासहित वा रहित, पंचेंद्रिय वा एकेंद्रियादि,

अल्प दिन तक संसारमें घूमनेवाले वा बहुत दिन तक दुःख भोगनेवाले, वगुला, उल्लू, बिल्ली, कुत्ता, कौआ गधा भंगी आदि अशुभता किन-किन कारणोंसे होती है और वह कौनसे कर्मोंके विपाकका फल है यह स्पष्ट कहिए। हम सब भव्य लोग सुननेके इच्छुक हैं।

नारायणका उत्तम प्रश्न सुन मेघ गर्जनाके समान गंभीर शब्द करती हुई भगवानकी दिव्यध्वनि खिरने लगी। उन्होंने कहा---तुमने जो प्रश्न किए हैं वे बहुत ही उत्तम हैं मैं उनका उत्तर कहता हूं, ध्यान देकर सुनो---

जो लोग हिंसक, असत्य बोलनेवाले, पराई स्त्री और धनके चुरानेवाले, मायाचारी, घमंडी, दूसरोंके सदा दोष देखनेवाले, और कृतघ्न होते हैं, वे पापी निश्चयसे दुःखोंके समुद्र नरकमें जाते हैं, जो लोग दानी, अर्हंतदेव के पूजक, तपस्वी, इंद्रियोंको वश करनेवाले, कोमल परिणामी, पवित्र विचारवाले, मिष्ट हित-मित बोलनेवाले, और गुरुओंके भक्त होते हैं वे स्वर्गमें जा सुख भोगते हैं। जो क्रूर पुरुष अपने मतलबके लिए तो दूसरोंसे स्नेह करते हैं परंतु भीतर खोटे अभिप्राय रखते हैं, और जो मायाचारी आडंबर दिखानेवाले, इर्ष्यालु, बहुत भोजन करनेवाले, बहुत सोनेवाले होते हैं, वे नाना दुःखोंसे पूर्ण तिर्यंच गतिमें जाते हैं और जो पुरुष उदार, विवेकपूर्ण, दया दानमें तत्पर, परकी निंदा न करनेवाले होते हैं वे मरकर मनुष्य गतिमें जन्म लेते हैं। जो स्त्री सत्यवादिनी, पवित्र एकदेश ब्रह्मचर्य धारण करनेवाली, स्थिर मनवाली, धर्मात्मा होती है वह मरकर मनुष्य होती है। जो पुरुष स्त्रियोंमें अधिक आसक्ति रखनेवाला, कामी, चपल, धूर्त और सदा स्त्रियोंका अन्वेषण करनेवाला होता है वह स्त्री पर्याय पाता है। जो लोग पशुओंकी नाक, कान छेदते हैं खोटे विचार रखते हैं, और सदा अपना शृंगार ही किया करते हैं वे नीच नपुंसक लिंगी होते हैं। जो जीवोंको पीड़ा देता रहता है, पक्षियोंके घोंसले तोड़ देता है, और विष खाकर मरता है उसकी अल्प आयु होती है जो सदा जीवोंकी रक्षा करता है, सबका उपकार करता है और परकी भलाई चाहता है, उसकी आयु बहुत होती है। जो द्रव्य रहते भी दान नहीं करता

अथवा दानकर पश्चात्ताप करता है तथा देते हुएको रोक देता है, वह भोगरहित दरिद्री होता है। जो सदा बड़ोंकी विनय करता है, जिनेंद्र भगवानकी आज्ञानुसार चलता है और दूसरोंको दुःख न पहुंचानेवाला शान्त-स्वभावी होता है, वह यशस्वी होता है। जो भेंट आदि लिये विना पढ़ते-पढ़ाते हैं, वे निर्मल बुद्धिके धारक होते हैं। जो क्रोधके वशवर्ती हो गुणी तपस्वी यशस्वी और विद्वानका तिरस्कार करता है, वह निर्बुद्धि हो जाता है। जो देव-गुरुकी भक्ति करनेवाला, पाप-पुण्यका ज्ञाता, जिनेंद्र भगवानके गुणोंका ध्यान करनेवाला होता है, वह विद्वानोंमें श्रेष्ठ होता है। जिसके नास्तिकता रहती जीव आदि वा धर्म अधर्मको नहीं मानता वह निन्दनीय मूर्ख होता है। जो मृग हंस तोता आदि पक्षियोंके बच्चोंको पिंजड़ेमें बंदकर पोषता है, वह पापी भव-भवमें कातर होता है। जो जीवोंकी रक्षा करनेमें तत्पर है, दूसरोंका दुःख दूर करता है और भूखोंको भोजन कराता है, वह पुण्यात्मा वीर होता है। जो पासमें द्रव्य न रहते भी दान करनेकी इच्छा रखता है, वह थोड़ेसे दानके प्रभावसे भी महालक्ष्मीवान हो जाता है। जो पहिले तो दान दे देता है पीछे पछताता है, वह दानका फल प्राप्तकर बुढ़ापेमें निर्धन हो दुःख भोगता है। जो पशु-पक्षियोंको तथा उनके बच्चोंको त्रास देते हैं, उनके पुत्र पैदा नहीं होते। कदाचित हों भी तो उन्होंने जो पहिले दूसरोंको कष्ट दे अपने शिरपर ऋणका बोझ लाद लिया है, उसके प्रभावसे मर जाते हैं और जिनके वह ऋण नहीं है अर्थात् जो पशु-पक्षियोंके बच्चोंको कष्ट नहीं देते, उनके परम चतुर सुंदर बच्चे होते ही हैं। जो विना सुनी बात कहता है, वह बहिरा और जो विना देखीको देखी हुई निवारण करनेपर भी बतलाता है, वह जन्मका अंधा पुरुष होता है। उत्तम कुलमें पैदा होकर भी जो मांस और मदिराका भक्षण करता है, उसके अजीर्ण उदररोग होता है। जो मुनियोंको देखकर मदांध हो थूकता है, वह रक्तपित्त रोगसे दूषित कोढ़ी होता है। जो जातिके अहंकारसे मत्त, स्वामीका द्रोह करनेवाले कृतघ्नी होते हैं, वे दूसरोंकी नौकरी करनेवाले दरिद्री होते हैं।

जो कृपालु, दूसरोंके धन स्त्री आदिमें शुद्ध मन रखनेवाले, औषध दान करनेवाले होते हैं, वे रोगरहित होते हैं। जो जैन सिद्धांतके सूक्ष्म भेद-प्रभेदोंको सुनकर निंदा करता है, वह मूढ़बुद्धि गूंगा होता है। जो व्रत शील यम नियम आदिको लेकर विषयासक्त हो छोड़ देता है, उसके कंपादि रोग होते हैं। जो मूढ़ पुरुष पक्षियोंके पंख काट देते हैं, वे उस पापसे पंगु होते हैं। जो दुष्कर तपोंको सदा तपते हैं, वे कामदेवके समान सुंदर होते हैं। जो स्वयं तो तप नहीं कर सकते, परंतु तप करनेवालोंकी निंदा करते हैं, वे अंगहीन कुरूप होते हैं। जो जीव अकाम निर्जराके वशीभूत हो क्रोधसे प्राण छोड़ते हैं, वे भव-भवमें वेदनायुक्त होते हैं। जो धर्ममें लीन मुनियोंकी शुश्रूषा करते हैं, सदा विरक्त रहते हैं, वे बाहुबलिके समान बली उन्नतकाय होते हैं। जो कंदमूलको खानेवाले हैं, पृथ्वीका कर्षण करते हैं, शून्य मतावलंबी हैं, वे मरकर एकेंद्रिय स्थावर होते हैं। भगवान अर्हंतके गुणोंमें मग्न, पुण्य-पापको जाननेवाले, धर्मभक्त, सदाचारी और विनयवंत पुरुष संसारमें थोड़े दिन रहते हैं और जो इनसे विपरीत हैं, वे अनंत काल तक दुःख भोगते रहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके धारक जीव शुक्लध्यानका आराधनकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो स्त्रियां जिनमंदिरोंकी निंदा करनेवाली हैं, दूसरोंके गुणोंका लोप करती हैं लड़ाका हैं वक्र दृष्टिसे देखती हैं वे नियमसे शाकिनी भूतिनी होती हैं। जो भीतरमें कपट रखते हैं दूसरोंके कल्याण व धनको देखकर डाह करते हैं वे मरकर उल्लू गदहा और कुत्ते होते हैं। जो गुरु व धर्मकी निंदा करता है और देव-द्रव्य खाकर पेट भरता है वह नीच काकयोनि पाता है जो अपनी जातिका घमंडी क्रोधी मृत्युसे डरनेवाला आत्मप्रशंसी मुंहपर मीठा भीतर दुष्ट होता है वह बड़े कष्टसे मरता है और जो ऐसे नहीं हैं उन्हें मरते समय कष्ट नहीं होता। जो दुष्ट कुलमें पैदा होकर भी सरल परिणामी सद्बुद्धि धर्मज्ञ और मायाचार रहित होते हैं वे तो भव्य हैं और जो उच्चकुलमें उत्पन्न होकर कुटिल भ्रांत चुगल और धर्मसे विपरीत चलनेवाले होते हैं वे अभव्य हैं। जो असद् धर्मका प्रचार करनेवाले

अति लोलुपतासे कुलाचारके वैरी तपस्वी हैं, वे मरकर पुद्गल होते हैं।"

इस प्रकार नारायण द्वारा पूछे गये प्रश्नोंका सविस्तर जवाव देकर श्रीविमलनाथ भगवानकी दिव्य ध्वनि वंद हो गई। उसे सुनकर वहुतसे भव्योंको तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो गई और वहुतसे संसार शरीर भोगोंसे विरक्त हो तपस्वी हो गये। इसके वाद दोनों भाई भगवानको नमस्कार कर नगरको लौट आये और सुखसे राज्य भोगने लगे।

अथानंतर श्रेणिकने श्रीमहावीर स्वामीसे पूछा---भगवन्! उन स्वयंभू और धर्मने ऐसा कौनसा कार्य किया था, जिससे वे नारायण और वलभद्र हुए। उत्तरमें भगवान कहने लगे--

इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें गंधसमृद्ध नामका एक देश है। उसका राजा मित्रनंदी था। उसने एक दिन मालीके मुंहसे सुव्रत जिनराजका आगमन सुना और वह उनकी वंदनाके लिए गया। वहां जाकर उसने जिनराजकी तीन प्रदक्षिणा दीं, भक्तिसे स्तोत्र पढ़े और नमस्कार कर वैठ गया। जिनराजने संसारकी अनित्यता वतलाते हुए धर्मका व्याख्यान किया। वे वोले--यह शरीर धन विषयसुख यौवन जीवन सव ओसकी वूंदके समान क्षण-भरमें विनश जानेवाले हैं। ये स्त्रियां स्वार्थकी भरी हैं, मतलव गांठनेके लिए हाव-भाव प्रीति दिखलाती हैं और उसके सिद्ध हो जानेपर छोड़ देती हैं। जो रात-दिन 'मेरा मेरा' चिल्लाते रहते हैं वे पद-पदमें दुःख भोगते हैं और आयुके अंतमें दुर्गतिको जाते हैं। स्त्री पुत्र देहादिक सव क्षण-विनाशीक हैं अतः किसीके भी नहीं हैं। ये जव तक आंखें खुली हैं तभी तक तो दीखते हैं। जहां आंखें मिचीं आयुका अंत हुआ फिर कुछ नहीं मालूम पड़ता। जिस प्रकार काठके जलानेसे अग्नि उसीमेंसे निकलती है उसी प्रकार अपने देहके भीतर ही अनंत दर्शनादि युक्त परमानंदकी खानि आत्मा मौजूद है ध्यान लगानेसे ही उसके दर्शन होने लगते हैं। भीतरी मल तो मंत्रजापसे ही दूर होता है परंतु अन्य वाह्य क्रियाओंके आरंभसे उस धर्ममार्गकी प्रतिष्ठा

कीर्ति बड़ाईकी चाट लगी रही उनका जीवन व्यर्थ ही है। जो लोग बुढ़ापेमें विषयोंको जीतकर तप तपना चाहते
हैं वे मेरु पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करनेवाले पंगुके समान हास्यास्पद होते हैं। काम क्रोध और लोभ ये तीनों
नरकके द्वार हैं मुनिगण इनको छोड़ कर चिदानन्द चैतन्यका ध्यान करते हैं। जो लोग गृहस्थावस्थामें स्त्रियोंके
साथ रहकर ममतावान् होकर भी धर्माचरण करना चाहते हैं वे बन्ध्याके पुत्रको आकाशके फूलोंसे सुशोभित
देखना चाहते हैं। चित्तमें अणुमात्र परिग्रहकी भी भावना रहनेसे गदहेके सींगके समान मोक्षप्राप्ति असंभव ही
समझना चाहिए। इसप्रकार विचार करते २ भगवानको तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया और तब नियोगानुसार एक
भवावतारी ब्रह्मचारी सारस्वत आदि चार लाख सात हजार आठ सौ बीस लौकांतिक देव आकर उनकी सराहना
करने लगे। वे गुणवान् दोषरहित वैराग्य रससे परिप्लुत जिनेन्द्रभगवान्से बोले कि--आपने जो विचार किया है
वह बहुत ही श्रेष्ठ है, उसे प्रयत्नसे कार्यमें परिणत कीजिए क्योंकि जो लोग प्रारब्ध कार्यको पूरा कर डालते हैं
वे शूर वीर विवेकी समर्थ दाता गुणी और संसारमें उत्तम पंडित समझे जाते हैं। इस जीवने अनंतवार स्त्री राज्य
धन आदिक सुख भोगे हैं, तो भी यह उनसे तृप्त नहीं होता है आपके वंशमें अनेक विशाल पराक्रमी चक्रवर्ती
आदि राजा हो गये हैं परन्तु वे सब कालके गालमें चले गये तब बताइये भला--निश्चल कौनसा पदार्थ है। विषय-
सेवनसे इंद्रियोंकी शक्ति क्षीण होती जाती है, पापका आस्रव होने लगता है और उससे दुष्कर्मका बंध हो जीव
नरकमें जा दुःख भोगता है। जिसप्रकार चंदनके पेड़की सुगंधिसे दूसरे वृक्ष सुगंधित हो जाते हैं उसीप्रकार
आपके सहवाससे अन्य जीवोंको मोक्षसुख मिल जाता है तब आपको तो निश्चय ही वह मिल जायगा।" लौकां-
तिक देवोंके इसप्रकार उत्साहवर्धक वचन सुन उन भगवानने जीर्ण तिनकेके समान राज्य छोड़ दिया यह देख
देवोंने उनका दीक्षाभिषेक किया। सामने मनोहर पालकी रख दी और उसमें भगवान विराजमान हो लिये। वह
पालकी पहिले तो सात पैंड तक भक्तिभावसे राजाओंने उठाई फिर उसे छ्यानवे (भवनवासियोंके ४० व्यंतरोंके ३२,

कल्पवासियोंके, २४ ज्योतिषियोंके २) इंद्र अपने कंधेपर उठा कर सहेतुकमल उद्यानमें ले गये। वहां मणि-शिलापर विराजमान हो भगवानने हजार राजोंके साथ अंतरंग बहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग किया। पर्यंकासन मांड़कर ध्यानस्थ हो सिद्धोंको नमस्कारकर माघ सुदी चतुर्दशीके दिन अंतिम प्रहरमें जिस-समय जन्मका नक्षत्र उदित हो रहा था, स्वयं दिगंबरी दीक्षा ली। भगवानको दीक्षित देख देवोंने आनंद मनाया और नमस्कार स्तुतिकर अपने अपने स्थान चले गये। भगवानने तेला धारण किया और उन्हें चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। नंदननगरके राजा विजयके यहां वे पारणाके लिये गये राजाने उन्हें भक्ति-भावसे नमस्कार कर पड़िगाहन किया और हाथ जोड़कर स्तुति की कि--भगवन्! आज आपके दर्शन करनेसे मैं कृतार्थ हो गया, मुझ सरीखे क्षुद्र पुरुषके घर आप सरीखे महानुभावोंका आगमन अति दुर्लभ है। जन्म जरामृत्युरूपी अग्निसे आकुलित हुए मेरे लिए आपका आगम चंदनके लेपके वा सुधा अथवा रसायनके समान हितकर है। आज मेरे घर कामधेनु आ गई कल्पवृक्षकी प्राप्ति हो गई अथवा विना बादलोंके वृष्टि हो गई अथवा मुझे परमपद ही मिल गया।

हे देव! जिस प्रकार चंद्रमाको देखकर समुद्र उमड़ आता है और अपनेमें नहीं समाकर बढ़ जाता है उसी प्रकार आपके दर्शनसे मेरा हृदय उल्लासित और प्रफुल्लित हो रहा है। इस प्रकार स्तुति करनेके बाद उसने भगवानके चरण धोये और नवधा भक्ति कर पुण्य उपार्जनकर दाताके सात गुणोंसे युक्त हो उसने खीरका आहार दिया। भगवानका निरन्तराय आहार होते देख देवोंने उसके घर रत्नोंकी वर्षा दुंदुभिका शब्द सुगंधित पवन अभिषेक वृष्टि और पारिजात पुष्पोंकी वर्षा की। ये पांच आश्चर्य हुए सो ठीक ही है

१—कुल इन्द्र १०० होते हैं, जिनमें तिर्यंचोंका इन्द्र सिंह तो आता नहीं है। मनुष्योंके इन्द्र राजाओंने सात पैंड तक पालकी उठा ही ली। अवशिष्ट ९८ इन्द्रों में से दो चमर ढोरते होंगे, बाकी ९६ पालकी ले चले।

रहती है। यदि वाह्यक्रिया असद् की जांय तो योगियोंको भी अधोगतिमें ही जाना पड़ता है। इस वास्ते मुक्ति सिद्ध करनेके लिए शांति और संयमका ही आश्रय लेना उचित है।

इस प्रकार सुव्रत भगवानका उपदेश सुन मित्रनंदीको वैराग्य हो गया। हे मगधेश्वर! संसारके दुःखोंका ध्यानकर उसने जिनदीक्षा ले ली। अब मुनि मित्रनंदी कठोर तप करने लगे। उन्होंने एक दो तीन तीन मासके उपवास करना आरंभ कर दिया। तपके तेजसे उनकी दीप्ति बढ गयी, ऋषिगण भी उनकी स्तुति करने लगे। उनका शरीर कृश हो गया था, आलस्य पास भी न फटकने पाता था। सदा ध्यानमें लीन रहते थे। इस प्रकार वहुत वर्षों तक तप तपकर आयुके अंतमें उन्होंने सन्यास धारण कर मरण किया और वे अनुत्तर विमान (सर्वार्थसिद्धि) में उत्पन्न हुये वहां वह तेतीस हजार वर्ष बाद एक बार आहार लेते थे, तेतीस पक्ष बाद एक बार श्वास लेते थे और शांत सुखका भोग करते थे।

अथानंतर इसी पृथ्वीपर धनादिसे अति शोभायमान द्वारावती नामकी नगरीमें भद्र नामका राजा राज्य करता था, सुभद्रा उसके रानी थी। एक दिन वह शयनगृहमें सो रही थी कि उसने रात्रिके अंतमें शुभ स्वप्न देखे। पहिले स्वप्नमें उसने मद झरता हुआ हाथी देखा, दूसरेमें जलसे भरा समुद्र देखा, तीसरेमें कलंकरहित पूर्ण चंद्रमा देखा और चौथे स्वप्नमें मुखमें प्रवेश करता सिंह देखा। इसके बाद प्रातःकालीन बाजोंके शब्दों और वंदिगणोंके गीतोंसे वह महारानी उठी। नित्यक्रिया कर वह अपने स्वामीके पास उन स्वप्नोंका फल पूछने लगी। राजाने निमित्तज्ञानसे उसका फल जानकर कहा—प्रिये! तुमने जो हाथी देखा है उसका फल यह है कि कुटुंबका उद्धार करनेवाला एक पुत्र तुम्हारे शीघ्र ही पैदा होगा। समुद्र देखनेसे वह गुणोंका समुद्र, पूर्ण चंद्र देखनेसे पूर्ण ज्ञान (केवलज्ञान) का धारी और सिंह देखनेसे विशाल पराक्रमका अधिपति होगा। राजासे स्वप्नोंका श्रेष्ठ फल सुन रानीको महाआनंद हुआ और वह भवनमें लौटकर आनंदसे

रहने लगी। बादमें वह सर्वार्थसिद्धिवासी अहमिंद्र पुण्य प्रभावसे चयकर सुभद्राके गर्भमें अवतीर्ण हुआ और उसके पुण्यसे माताको किसी प्रकारका कष्ट न हुआ। जब पूर्ण मास हो गए तो रानीने सुंदर गुणी पुत्रको जन्म दिया जिसका नाम धर्म रक्खा गया। जो कि बलभद्र पदका धारक हुआ।

अथानंतर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें श्रावस्ती नामकी एक मनोहर समृद्धिशाली पुरी है। वहांका राजा सुकेतु था। वह सदा भोगोंमें लीन रहनेवाला जुआरी था। यद्यपि बुद्धिमान् मंत्री राजाको सदा निषेध ही किया करते थे तो भी वह जुआ खेलना न छोड़ता था, सो ठीक ही है, जो स्वाद जान जाते हैं उनसे फिर वह काम कठिनतासे छोड़ा जाता है। एक दिन सुकेतु अशुभ कर्मकी प्रेरणासे अपने शत्रु राजाके साथ मंत्रियोंके निषेध करने पर भी जुआ खेलने लगा। उसने अपना समस्त धन, समस्त राष्ट्र समस्त सैन्य और यहांतक कि पट्टरानी तक दावपर लगा दी और उन सबको एक-एक कर हार गया। इस प्रकार जब केवल अपना शरीरमात्र रह गया, तो उसको बड़ी लज्जा मालूम हुई। पश्चात्ताप और शोकसे उसका मुख सूख गया। यह देख शत्रु राजाने उससे कहा—दानी धनी-मानी और पराक्रमी पुरुष अन्यकी पृथ्वीपर वास नहीं करते, इसलिए अब तुम्हें भी चुपचाप यहांसे दूसरी जगह चल देना चाहिए। शत्रुके इन मर्मभेदी वाक्योंसे पीड़ित हो सुकेतु वहांसे जंगलकी ओर चल दिया और वहां उसके पुण्यके उदयसे सुदर्शन मुनिराजके दर्शन हुए। सुकेतुने उनसे धर्मोपदेश सुना और विरक्त हो जिनदीक्षा ले घोर तप तपना प्रारंभ कर दिया, परंतु देश, द्रव्य आदि हार जानेसे उसके अंतरंगमें वही लौ लगी थी, इसलिए उसने उसके प्राप्त होनेका निदान किया। उसने सोचा कि मरनेपर मेरे इस तपके फलसे मुझे महाधनकी प्राप्ति हो, शत्रुओंसे मैं अजेय होऊं, अनेक गुण, कला और पांडित्यका स्वामी होऊं। इसके बाद आयु क्षय होनेपर वह संन्यास विधिसे मरा और लांतव स्वर्गमें जा उत्पन्न हुआ। वहां उसने चौदह सागरकी आयु पाई और नाना तरहके स्वर्ग-सुख भोगे।

अथानंतर उसी द्वारावती नगरीके राजा भद्रकी दूसरी रानी पृथ्वीमती एक दिन सो रही थी कि उसने सूर्य, चंद्रमा, लक्ष्मी, विमान, समुद्र, इंद्रधनुष और सिंह क्रमसे सात पदार्थ स्वप्नमें देखे। इसके बाद उसकी नींद खुल गई। पतिसे उन स्वप्नोंका फल जब पुत्ररत्नकी प्राप्ति होना सुना, तो उसे बड़ा आनंद हुआ। गर्भके दिन समाप्त हो जानेपर प्रतापी, आनंद करनेवाला, तीन खंडकी लक्ष्मीका भोक्ता, शत्रुओंका नाशक और महा पराक्रमी पुत्र पैदा हुआ और उसका नाम स्वयंभू रक्खा गया। इस प्रकार वे दोनों धर्म और स्वयंभू दोजके चंद्रमाके समान बढ़ने लगे। उन दोनोंमें प्रगाढ़ स्नेह था और एक प्रेमकी दो मूर्ति ही मानों बना दी गई हैं, ऐसे मालूम पड़ते थे। बड़े होनेपर वे दोनों एक साथ राज्यका भोग करने लगे, अनेक सभ्य पुरुषोंसे युक्त वे ताराओंसे सुशोभित चंद्रमा और प्रतापी सूर्य सरीखे लगते थे।

जिसने सुकेतुको जुएमें जीत लिया था और उसके राज्यपर अपना कब्जा कर लिया था, वह मरकर रत्नपुरका राजा मधु हुआ। उसके भरतक्षेत्रके तीन खंडोंकी लक्ष्मी थी, चक्र आयुध था, शत्रुओंसे अजेय था और पृथ्वीपर प्रतिनारायण नामसे प्रसिद्ध था।

एक दिन मार्गमें राजा मधुके लिए बहुतसे रत्नोंसे युक्त भेंट सेवक ले जा रहे थे, उसे देख मानी स्वयंभूने पूछा—यह किसके लिए ले जा रहे हो? जबाबमें सेवकोंने कहा—देवसेन राजाने शत्रुओंके विजेता महापराक्रमी चक्रवर्ती मधुके लिए यह भेंट भेजी है, हम इसे ले जा रहे हैं। मधुका नाम सुनते ही स्वयंभूको पूर्व भवका बैरी होनेसे क्रोध आ गया और उसने सेवकोंसे जबर्दस्ती भेंट छीन लेनेका पक्का विचार कर लिया। स्वयंभूने क्रोधमें आकर अपने शब्दसे आकाशको गुंजा देनेवाला तीर छोड़ा और वह हाथीके मस्तकको छेदकर सात तालोंको पार कर गया। लोगोंने जब तीर छोड़नेके शब्दको सुना, तो वे डर गये प्रलयकालीन समुद्रकी गर्जना समझने लगे। भाई धर्मके निषेध करनेपर तो छेड़े क्रोधी सांपकी तरह स्वयंभूका क्रोध और भी भड़का। यह देख

धर्मने उसे बहुत प्यार और शांत उपदेशके द्वारा कहा---भाई ! जो स्वभावसे ही दुष्ट, हीन जाति, अज्ञानी, नीच पुरुष होते हैं, वे भी चरानेवाले (ग्वाले) को मारकर कभी गाय छीनना पसंद नहीं करते, फिर तुम तो ज्ञानी उच्चकुलके श्रेष्ठ पुरुष हो, तुम्हें तो रखवारोंको मारकर कोई वस्तु ग्रहण ही न करनी चाहिए। आपत्ति पड़नेपर भीं सज्जन लोग पापकर्मका आचरण नहीं करते, क्या भूख लगनेपर मुर्गेकी तरह हंसको भी कभी कीड़े-मकोड़े खाते देखा है ? तू शूरवीर गुणी पुरुष है तुझमें लक्ष्मीका अनुराग है, वह तुझे छोड़ कहीं जाना नहीं चाहती। जो लोग शिष्ट पुरुषोंके चलाये हुये क्रमको भंग नहीं करते वे ही वास्तवमें शूर, विचारशील, दानी, धनी, मानी, रूपवान् और धीर हैं। सिंह अंजनगिरिके समान उच्च, हस्तियोंके कुंभस्थलको विदार कर मांस खानेका प्रेमी है वह क्या कभी मदसे चिल्लाते हुए श्यालको मार कर खा सकता है ? इसीप्रकार वीर पुरुष सदा वीर समर्थ पुरुषोंसे ही युद्ध कर अपने दिलके अरमान निकालते हैं आजतक यह तो कभी देखनेकी तो बात क्या ? सुना भी नहीं गया कि किसी राजाने किसी दूतको मारा हो ! यहांतक कि मांसभक्षी म्लेच्छ लोग भी ऐसा काम नहीं करते। इसी विषयमें एक कथा है, तुम ध्यान लगा कर सुनो।

इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें एक चंपापुरी है। वहांका राजा कामके समान सुन्दर महासेन था, उसके मदनवेगा नामकी रानी थी। एक दिन उज्जयनी नगरका रहनेवाला चित्रकर्म नामक नट उस राजाकी दान-शीलताकी प्रशंसा सुन घूमता फिरता वहां आया। आकर उसने नाना रस, अलंकार, हाव, भाव, लय, तान आदि नाट्य कलाओंसे उस राजाका मन वश कर लिया परंतु इतना होनेपर भी वह नट वहां छह महीना तक अपने कलाकौशल दिखलाता पड़ा रहा, अपने पाससे खर्च कर खाता रहा परंतु कृपणतासे उसे राजाने कुछ भी द्रव्य न दिया जब उस नटके पास कुछ भी खर्च करनेको न रहा तो उसने राजासे भिक्षा मांगी। बस ! अब तो राजाके क्रोधका ठिकाना न रहा, उसने सेवकोंसे कहा—अरे इसके पास जो कुछ है वह सब छीन लो और मार

पीट कर निकाल बाहर करो। राजाकी यह आज्ञा सुन यद्यपि मनमें खेद हुआ तो भी सेवकोंने उस नटको नगरसे बाहिर निकाल दिया। अपमान द्वारा निकाले जानेसे उस नटको महान् दुःख हुआ, वह रैवतिक पर्वत परसे कूदकर मर गया और उससमय एक मुनिराजसे पंचनमस्कार मंत्र सुन प्राण छोड़े। मंत्रके प्रभावसे वह नट इसी नगरीके धनेश व्यवहारीकी कमला स्त्रीसे मृगकेतु नामका पुत्र हुआ।

इसी नगरमें मेघ नामका एक और सेठ है, उसकी स्त्रीका नाम कायांकी है। एक दिन उसपर मृगकेतुकी दृष्टि पड़ी और वह कामासक्त हो मनमें बुरा अभिप्राय करने लगा। उसने विचारा कि यदि इस सुंदरीके साथ मेरा समागम न हुआ, तो फिर यह जीवन, यह धन, यह घर और सुख सब व्यर्थ ही हैं। बस! यह सोचकर कायांकीसे उसने एक दिन संगम करनेकी इच्छा प्रकट की। उसके कटुक वचनोंको सुनकर कायांकीको यद्यपि क्रोध आ गया, तो भी ऊपरसे उससे बिना कुछ कहे-सुने वह घरमें चली गई। इसके बाद मृगकेतुने बहुतसे उपाय कायांकीके साथ व्यभिचार करनेके किये, परंतु जब एक भी सफल न हुआ, तो वह पापी राजाके पास गया और बोला---महाराज! सिंहलद्वीपमें गंधिल नामका एक पक्षी होता है, यदि वह लाया जा सके, तो बहुत अच्छा हो। राजाने जब उसके गुण और लाभ पूछे, तो वह बोला---जिस देश, जिस राज्य और जिस घरमें वह पक्षी रहता है, वहां कभी दुष्काल नहीं पड़ता और न अनिष्ट ही होता है। यह सुन राजाने पक्षीको लानेका यत्न पूछा, तो मृगकेतुने जबाब दिया---महाराज! इस नगरमें जो मेघ सेठ रहता है, वह वहां जाकर ला सकता है। मृगकेतुकी बातपर विश्वास कर राजाने मेघ सेठको बुलाया और उसे अति आग्रहके साथ सिंहलद्वीपको भेज दिया। अवसर पाकर मृगकेतु कायांकीके पास अपनी दुरिच्छा पूर्ण करनेके अभिप्रायसे गया। कायांकी बड़ी चतुर स्त्री थी। उसने मनमें मृगकेतुसे बचनेका यत्न सोचकर कहा- -आइये! आइये! बैठिये। आपने मुझपर अति कृपा की जो मेरे घरपर पधारे। इसके बाद उसने एक विष्ठाके भरे गड्ढेके ऊपर बिना बुना एक

पलंग विछा रक्खा था और उसपर एक मनोहर कपड़ा विछा रक्खा था, उस जगह मृगकेतुको वैठाया। वस! अव क्या था, वह पलंगपर वैठते ही धड़ामसे उस नरकतुल्य गड्ढेमें गिर पड़ा। सो ठीक ही है--चतुर पुरुष जो काम करते हैं, उसका पहलेसे किसीको पता नहीं चलता। अव वह मृगकेतु काककी तरह उसी गड्ढेमें पड़ा-पड़ा दुःख भोगने लगा और जो कुछ वचा-खुचा अन्न कायांकी उसको खाने देती, उसीसे पेट भरने लगा।

इसके वाद मेघ सेठ छह महीनेके वाद उस पक्षीको न पाकर लौट आया। घर आकर स्त्रीसे उसने मृगकेतु की सारी हकीकत सुनी, तो सोचा कि इसी दुष्टको वाहर निकालकर चित्र-विचित्र पंखोंसे सजाकर क्यों न राजाकी सेवामें उपस्थित करूं। वस! यही सोचकर छह महीने निरंतर पाये हुए कष्टोंसे दुवले हुए उस मृग-केतुको विचित्र पक्षी वनाकर राजाकी सभामें उपस्थित किया और कहा--महाराज! यही वह विलक्षण गंधिल पक्षी है। मृगकेतुकी ऐसी दुरवस्था देख नगरके सव स्त्री-पुरुष ताली पीट-पीटकर हंसने लगे। धनेशके पुत्रको कुमार्गगामी समझ राजाने उसे नगर व देशसे निकाल दिया। तिरस्कारजन्य वैरके वशीभूत हो उसने समस्त नगरके नाश करनेका वुरा निदान वांध प्राण छोड़े और वह उसी नगरके भयंकर वनमें वड़ी-वड़ी दाढ़ोंका धारक, निष्ठुर, क्रोधी, हड्डियोंकी माला पहिननेवाला राक्षस हुआ और मनुष्योंको मार-मारकर खाने लगा। उस राक्षसके डरसे लोग सदा व्याकुल रहने लगे, उनको खाना-पीना भी कठिन हो गया, मरनेके डरसे लोग वाहर भी न निकलने लगे। जव नगरवासियोंका अतिक्षय राजाने देखा, तो अनेक तर्क-वितर्कोंसे यह निश्चय किया कि प्रतिदिन क्रमसे एक आदमी उसके पास भेजा जाय, जिससे वाकी लोग निर्भय हो रहें एवं वह सदा वनमें ही रहा करे। यह विचार उस राक्षसके पास एक दूत भेजा गया। दूतको अपने पास आता देख दुष्ट निर्दयी राक्षस खानेके लिए तैयार हो गया। तव दूतने विनयके साथ राक्षससे कहा--भाई! मुझे क्यों खाते हो? मैं तो राजाका दूत हूं। उसका संदेशा तुम्हारे पास लेकर आया हूं। दूतकी यह वात सुन राक्षसने मनमें

यह सोचकर कि 'इसको मारनेसे गुरु-हत्याके समान पाप लगेगा' कहा---अच्छा ! जा ! जा ! मेरे सामनेसे चला जा ।

इस प्रकार जब राक्षसने भी दूतको न्यायविरुद्ध जान बिना मारे छोड़ दिया तब यशस्वी, गुणी, मानी और पराक्रमी तुम सरीखे सज्जनको तो दूत कभी भी न मारना चाहिए। अपने सीधे साधे रास्ते पर जाते हुए शृगालको क्या हाथियोंके मारनेवाले सिंहने कभी मारा है ? या तुम ही इस अनोखे कार्यको करने पर उतारू हुए हो ? इस प्रकार भाई धर्मने स्वयंभूको अनेक तरह समझाया तो भी उसने उन दूतोंको मार डाला और भेंट छिना ली । इसके बाद घर जाकर वे दोनों नारायण और बलभद्र सुखसे भोग भोगते रहने लगे ।

अथानंतर एक दिन सभासदोंसे वेष्टित महाराज मधु सिंहासनपर बैठे थे कि उन्हें आकाशसे उतरता हुआ अनेक प्रकारके रत्नोंसे वेष्टित सुंदर बिजलीके समान चमकता हुआ एक विमान दीख पड़ा और उसमें बैठे विशालकाय देवर्षि नारद दीखे। पासमें आनेपर मधुने उनका उचित आदर सत्कार किया और अपने बराबर उन्हें सिंहासन पर बैठाया । इसके बाद नारदने मधुकी कुशल क्षेम पूछी और फिर कहा--भाई मधु ! स्वयंभू बड़ा दुष्ट है, उसने तेरा बड़ा अनादर किया है । अभी हाल ही की बात है कि दो दूत तेरे पास भेंट लेकर आ रहे थे मार्गमें स्वयंभूने उन्हें देख लिया और उसके बड़े भाई धर्मने अनेक तरह रोका तो भी दोनों दूत मारकर उसने भेंट छिना ही तो ली । स्वयंभू सांपके समान भयंकर है, बृहस्पतिके समान विद्वान् है, इंद्रके समान क्रीडाप्रेमी है, सूर्यके समान प्रतापी है, मेरुके समान दृढ़ प्रतिज्ञ है, और अपने घमंडमें तुझे तिनकेके समान भी नहीं गिनता । नारदके यह वचन सुन मधुके क्रोधका ठिकाना न रहा । वह एक सिंहकी गर्जना सुन जिस प्रकार दूसरा सिंह गर्ज उठता है उसी प्रकार वह गर्जा ।

इस प्रकार लड़ाईका बीज बोकर नारद तो आकाशसे जैसे आए थे वैसे ही चले गए और इधर

मधुने क्रोधमें आकर धर्म और स्वयंभूका नाश करनेके लिए सैन्यको लड़ाईके लिए तैयार करनेका हुक्म दिया। राजाकी ऐसी आज्ञा सुन बुद्धिमान् वृद्ध मंत्री एकत्र हो कहने लगे—"राजन्! जयकी इच्छा करनेवालोंको कोई काम जल्दी न करना चाहिए। जो लोग समुद्रके समान गंभीर हैं, नीतिशाली और पराक्रमी हैं, वे क्षुद्रों पर तो क्रोध नहीं करते और संसारमें दुर्जय समझे जानेवालोंको बिना वश किए कभी छोड़ते नहीं। देखिए! शृगाल चाहे कितना भी भोंकता रहे परन्तु सिंह शृगाल न मार हाथीको ही मारता है। सम्पूर्ण कार्य धीरे धीरे ही सिद्ध होते हैं। देखिए! शरदऋतुमें पैदा होनेवाले धान्यादि शरदऋतुके आनेपर ही धीरे २ पैदा हो सकते हैं।" मंत्रियोंकी यह बात सुन मानी मधु कहने लगा—"आप लोगोंने कहा वह ठीक है परंतु दुर्जय व्याधि और दुर्जय शत्रु शीघ्र ही नष्ट कर देने चाहिये अन्यथा अल्पस्थान पा जानेपर भी ये प्राण लेनेवाले होते हैं। जिस प्रकार सूरजके निकलनेपर उल्लू अपने आप छिप जाते हैं वैसे ही शत्रुओंके नाश करनेवाले चमचमाते हुए चक्रको जिस समय मैं हाथमें लेता हूं तिस समय दुर्जय मत्त वैरियोंके भी पते नहीं लगते। जो पुरुष बलवान हैं, वे शत्रु वश करनेके लिए साम आदि तीन नीति काममें न लाकर केवल निग्रह करना ही ठीक समझते हैं।" इस प्रकार अपने अभिप्रायकी पुष्टि करते हुए मधुको यद्यपि अपशकुन हुए, तो भी वह बिना किसी प्रकारकी शंका किये हुए रण करने चल दिया। तिस समय पर्वतके समान ऊंचे, मदको वर्षानेवाले और चिंघाड़ते हुए हाथी चल रहे थे। पृथ्वीको अपनी टापसे खोदनेवाले चित्र-विचित्र हिनहिनाते हुए घोड़े कूदते जा रहे थे और नाना तरहके तीर भाले बरछी आदि बांधे हुए पदाति (पैदल सेना) जा रहे थे। तिस समय राजा मधु अनेक राजोंसे वेष्टित हो चल रहा था और प्रलयकालीन समुद्रके समान भयंकर जान पड़ता था। इस प्रकार सजधजके साथ जाकर मधुने स्वयंभूका नगर चारों तरफसे घेर लिया। जब स्वयंभूको यह मालूम हुआ, तो वह भी मधुके सामने दल-बल सहित जयके बाजे बजाते और शत्रुओंको कँपाते हुए

समस्त सेना बेहोश कर दी है इसलिए विषकी बेलके समान इसके नाशका उपाय भी शीघ्र ही होना चाहिए। छोटे भाईकी यह बात सुन बलभद्र धर्मने कहा --चिंताकी कोई बात नहीं है। एक उपाय मैं बतलाता हूं उसे काममें लाओ। विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें अलकपत्तन नामका एक नगर है उसका स्वामी महाचूल अपना मित्र है। महाचूलको इस दुश्मनकी विद्या जीतनेके लिए शीघ्र ही लाना मुनासिब है। भाईकी यह बात सुन स्वयंभूने कहा---तब तो आप बिना विलम्ब जाइए और उसे मित्रको लेकर शीघ्र ही चले आइए। इसमें विचारनेकी कोई बात नहीं है। बस! यह सुनकर विद्याधरके साथ विमानमें बैठकर वह धर्म बलभद्र विद्याधरलोकको चल दिया! इधर तो वह आकाशमें जाने लगा और उधर नारदके मुंहसे यह समाचार जान मधुने समस्त आकाशको आकाशावरोधिनी विद्यासे रोक लिया और पीछेसे उसको मारनेके लिए भ्रामरी विद्या भेज दी जिससे उसने बलभद्रको पकड़कर समुद्रमें पटक दिया। समुद्रमें गिरते समय बलभद्रके मुंहमें केवल अनादि सिद्ध 'ओम्' ये ही दो अक्षर थे। उनके प्रभावसे समुद्रके अधिपति मणिचूल नामक यक्षका आसन कांप गया और शीघ्र ही उसकी देवी अंबाने आकर उसे अधर ही ले लिया। फिर उसका सत्कार कर भेंटमें एक एक मणि दे तट पर छोड़ दिया इसके बाद वे ज्यों ही साथी विद्याधरकी याद करने लगे त्यों ही आकाशमें आते वह दीख पड़ा और फिर उसके विमानमें बैठकर अपने अभीष्ट स्थानको चल पड़े। मधुकी छोड़ी हुई भ्रामरी विद्या इनके पीछे पीछे चल रही थी उसने भेरुंड पक्षीका रूप बना कर बलभद्रको निगल लिया। बलभद्रने भी उस दुष्ट विद्याके पेटको नख मुष्टि और पैर आदिके प्रहारसे चीर डाला और ज्यों ही पर्वतपर गिरने लगा त्यों ही लाघवी विद्यासे उस साथी विद्याधरने उसे थामकर अपने विमानमें बिठा लिया एवं गंगाह्रदपर पहुंच गए। वहां उन लोगोंने कुछ देर विश्राम किया, ह्रदका स्वच्छ स्वादिष्ट जल पीया और जब चलनेकी तयारी करने लगे तो वही भ्रामरी विद्या फिर भी सिंहीका रूप धरकर खानेके लिए आई। उससमय बलभद्र

आया। रणस्थलमें आते ही उसने मधुसे कहा—"अरे नराधम! जो युद्ध करनेके लिए आते हैं वे क्या यों ही आकर पड़ रहते हैं फिर तू ही क्यों विना युद्ध किये पड़ा है?" स्वयंभूकी यह गर्जना सुन मधुने उत्तरमें कुछ न कह वाण वर्साने शुरू कर दिए और उनसे अन्धकारमय आकाशको वना दिया धनुषकी ज्याके शब्दोंसे जो पर्वत प्रतिध्वनित हुए उनसे मेघ गर्जनेका भ्रम कर मयूर कूकने लगे। उस समय हाथियोंके सवार हाथियोंके सवारोंसे लड़ने लगे, रथमें वैठे रथवालोंपर वाण चलाने लगे। घुड़सवार घुड़सवारोंसे जूझने लगे, जिनके हाथोंमें भाले थे वे भालोंपर चोट करनें लगे, जिनके पास खड्ग थे वे खड्गधारियोंपर चलाने लगे, गदावाले गदावालोंपर, कोड़ेवाले कोड़ेवालोंपर, वाणवाले वाणवालोंपर, हल मूसलवाले हलमूसलवालोंपर अस्त्र छोड़ने लगे। इस प्रकार कायरोंको भयभीत करनेवाले उस घमासान युद्धमें स्वयंभूकी सेना डरसे भाग खड़ी हुई सो ठीक ही है मौतसे भयंकर दूसरी क्या चीज है? अपनी सेनाको भागती हुई देख नारायण स्वयंभूके क्रोधका ठिकाना न रहा, वह अपने भाई धर्मके साथ प्राणपणसे युद्धके लिए तैयार हो गया और जिस प्रकार इंद्र पर्वतोंको गिराता है उसी प्रकार हाथी हथिनियोंको मार-मारकर गिराने लगा और वे उस समय ऐसे मालूम पड़ने लगे मानों कज्जलके समान काले अंधकारको सूर्य ही अपनी किरणोंसे गिरा रहा हो। इस प्रकार सेनाके मुख्य अंगको नष्ट होते देख मधुको अति चिंता हुई। वह सोचने लगा कि—यह दुर्जय शत्रु मालूम पड़ता है यह किस तरह जीता जायगा? इत्यादि अनेक सोच विचारके वाद उसने शल्य वाण छोड़ा और उससे स्वयंभूकी सेना कीलित के समान स्थिर हो गई। इसके वाद उसने मोहित करनेवाला संमोहन और अंधा करनेवाला तामस अस्त्र छोड़ा जिससे एक साथ स्वयंभूकी सेना व्यामुग्ध हो गिर पड़ी। यह देख पराक्रमी स्वयंभूको भी महा चिंता हो गई और वह भाई धर्मसे परामर्श करने लगा कि—हमें अब क्या करना चाहिए। यह शत्रु तो दुर्जय है, मेरुके समान निश्चल खड़ा है और इसीकी जीत होगी ऐसा मालूम पड़ता है। इसने अपने वाणोंसे हमारी

पंचनमस्कार मंत्रका जप करते हुए मजबूत मुक्कियों, लातों आदिसे उसे मारने लगे। जब सिंहीने देखा कि यह इस प्रकार जीता नहीं जा सकता, तो उसने उसे पकड़कर पत्थरके नीचे दबा दिया। इस प्रकार विद्या तो उसे दबाकर चली गई और उसी जगह मणिचूल विद्याधर अपनी रानीके साथ क्रीड़ा करने आया था, उसने हलती हुई शिला देखी। विद्यासे कीलित पत्थरको उस पराक्रमीने अपने हाथोंसे उठाकर दूर किया, तो नीचे बलभद्र दीख पड़े। परस्पर एक दूसरेको परिचित देख वे प्रेम और हर्षके साथ मिले और नाना तरहकी बातचीत करने लगे। बलभद्रने युद्धका सारा वृत्तांत कहा और साहाय्यके लिए मित्र मणिचूलको लेकर चलने लगा। मार्गमें भ्रामरी फिर आई और विद्याधरके शिरपर उसने गोवर्धन पर्वत उखाड़कर पटका, परंतु विद्याधरने उसे भ्रामरी विद्याका काम समझकर उस विद्याको ही वज्रकी सांकलसे बांध लिया और पूछने लगा—अरी रांड़! सच-सच बता तू कौन है? नहीं तो तेरी जान निकाल डालूंगा। विद्या बोली—मैं मधु राजासे भेजी गई भ्रामरी विद्या हूं और बलभद्रके मारनेके लिए नियुक्त हुई हूं, परंतु इस पराक्रमीसे मेरा कोई वश नहीं चलता। हे महाबाहु! मुझे इस बंधनसे छोड़ दीजिये, मैं अपनी जगह चली जाऊंगी। यद्यपि मेरी शक्ति सूर्य चंद्रको गिराने तककी है, परंतु क्या करूं? आपका मैं बाल भी बांका नहीं कर सकती।

इसके बाद महाचूलने उस भ्रामरीको तो छोड़ दिया और धर्मके साथ मधुकी सैन्यमें जा उतरा। वहां स्वयंभूको नमस्कार कर कुशल-क्षेम पूछी। उसने कहा—मधु शत्रुने तीन महाविद्या छोड़ी हैं और उनका प्रतीकार किसीसे नहीं हो रहा है, इसलिए उनके नाश करनेवाली महाविद्याओंको सिद्ध करनेके लिए मैं जाना चाहता हूं। विद्याधरकी यह बात सुन स्वयंभूने उसे जानेकी सम्मति दे दी और शीघ्र ही वापस आनेकी प्रेरणा की। अब महाचूल वहांसे चलकर हेमंत पर्वतपर गया और वहां समस्त वस्त्र उतारकर नग्न हो लाल नेत्रोंवाले सांपको तो गलेमें डाल लिया, हड्डियोंका मुकुट मस्तकपर धारण किया और रुण्डोंकी माला हाथमें ले छत्तीस भुजा-

वाली मानसी विद्याको साधना प्रारंभ कर दिया। अल्प दिनोंमें ही उसे वह विद्या सिद्ध हो गई और तब वह संग्राममें लौट आया, सो ठीक ही है—पुण्यके उदयसे क्या काम सिद्ध नहीं होता है। विद्याधर महाचूलने उस मानसी विद्याके बलसे मधुकी तीनों विद्यायें नष्ट कर डालीं और जब स्वयंभूने अपना सैन्य जागृत देखा, तो उसे बहुत ही जोश आ गया एवं मधुकी सैन्यको तीव्र आघातोंसे घायल करने लगा। मधुने जब उसे दुर्जय समझा, तो स्वयं उसके सामने आया और नाना अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें कुशल होनेके कारण क्रोधाग्निसे दीप्त हो अग्निबाण, जलबाण, नागबाण आदि अनेक प्रकारके बाण स्वयंभूपर छोड़ने लगा, उत्तरमें स्वयंभू भी कुछ कम न था, उसने भी प्रतिपक्षी बाणोंसे उसका जवाब दिया। जब सब तरहसे मधु हार गया और स्वयंभूसे पार न पाई, तो क्रोधमें आ चक्र चलाया। चक्र पहले तो सीधा आकाशमें गया और फिर उस स्वयंभूकी तीन प्रदक्षिणा दे दाहिने हाथमें ठहर गया। सो ठीक ही है—पुण्यसे क्या पदार्थ नहीं मिलता है। इस प्रकार जब चक्र व्यर्थ चला गया, तो मधुको बड़ी भारी गुस्सा आई, वह मेघके समान कड़ककर बोला—रे क्षत्रियाधम स्वयंभू! यदि तुझमें वास्तवमें सामर्थ्य है, तो शीघ्र ही चक्र छोड़। तू निश्चय समझ तेरा नाशकाल बहुत समीप है। यह सुन स्वयंभूने कहा—अरे! बुड्ढेपर, स्थूलपर, कायरपर, निरपराधीपर और स्त्रियोंपर शूरवीरोंकी तलवार नहीं उठती, इसलिए मैं चक्र चलाना तुझ बुड्ढेपर उचित नहीं समझता। इसके जवाबमें मधुने कहा---अरे, जो शत्रुओंको जड़-मूलसे उखाड़ डालनेकी सामर्थ्य रखते हैं, वे ही तलवार धारण कर सकते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी के भारको शेषनाग ही धारण कर सकते हैं, कुएँमें रहनेवाला मेंढ़क नहीं। स्वयंभूने कहा---सूरज समस्त जगतके अंधकारको नष्ट करता है, परंतु तो भी वह विवरके भीतर उजाला नहीं कर सकता। इसलिए क्या उसकी महत्तामें कोई बट्टा लगता है? यह सुन मधुने कहा---अरे, पंगु क्या मेरुपर चढ़ सकता है? समुद्र क्या छोटीसी नावसे पार किया जा सकता है? जिस प्रकार इन दोनोंका होना असंभव है, उसी प्रकार तुझ क्षुद्रसे मेरा जीता

जाना भी कठिन ही है। स्वयंभूने कहा---अंजनगिरिके समान उन्नतकाय हस्तियोंको मारकर उनके मांस को खानेवाला मृगराज सिंह शृगालको कभी नहीं खाता अथवा घास कभी नहीं खाता। इसी प्रकार मैं भी वीरोंको छोड़कर तुझ सरीखे कायरको मारना पसन्द नहीं करता। यह सुन मधु बोला---हां, हां ! यह तो ठीक ही है। परंतु रे दासीपुत्र ! जो अपने पराक्रमसे समस्त पृथ्वीतलको कँपा देते हैं, वे भी इस प्रकार निर्भय हो यमराजके मुंहमें हाथ नहीं देते। रे नीच, यदि तुझमें सचमुच सामर्थ्य है, तो क्या देखता है। क्यों नहीं पाये हुए चक्रको चलाता ? मधुकी ऐसी कठोर बात सुन स्वयंभूसे न रहा गया। उसने चक्रको घुमाकर छोड़ दिया और उससे मधुके दो टुकड़े हो गये। सो ठीक ही है--जिसकी मृत्यु जिसके हाथ होनी होती है, वह किसी तरह रुक नहीं सकती। मानी मधुने रौद्र ध्यानके साथ प्राण छोड़े। वह अपने पापका फल भोगनेके लिए सातवें नरकमें पहुंचा और वहां दुःख भोगने लगा।

मधुके मारे जानेसे स्वयंभू चक्रका स्वामी हो गया, अब उसकी आज्ञा सर्वत्र फैल गई। भरत क्षेत्रके तीन खंड उसने अपने गुण और सैन्यसे वश कर लिये। अर्धचक्री स्वयंभू नाना तरहके भोग भोगने लगे। वे शिष्टों का पालन, दुष्टोंका निग्रह कर समस्त प्रजाको सुखी और संतुष्ट रखने लगे। उनके सोलह हजार रानियां थीं, आठ हजार मंडलीक आर्य राजा और आठ हजार म्लेच्छ राजा उनकी सेवा करते थे।

अथानंतर कुछ काल बीतनेपर स्वयंभू मृत्युको प्राप्त हो गया और तीव्र वैरके कारण वह भी सातवें नरकमें पहुंचा। उन दोनों नारायण प्रतिनारायणोंको दुःख उस सातवें नरकमें था, उसे कविगण तो कह नहीं सकते, हां, तीर्थंकर भगवान कह सकते हैं। स्वयंभूके वियोगसे बलभद्रको पहले तो अति संताप हुआ और छह मास तक भाईकी लाशको साथ २ लिये फिरते रहे, फिर काललब्धिके प्रभावसे यथार्थ ज्ञान हो वैराग्य प्राप्त हुआ। वह तीर्थंकर विमलवाहन स्वामीके समवसरणमें गये और वहां नमस्कार स्तुतिकर भक्ति-भावसे जिनदीक्षा ले

मुनि हो गये, सो ठीक ही है---भावका होना ही सबसे अधिक कार्यकारी होता है। मुनि धर्मने अपनी शक्तिको न छिपाकर घोर तप तपा और घातिया कर्मोंको नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अंतमें अघातिया कर्मोंको नष्टकर मोक्ष प्राप्त की, सो ठीक है---तपके आचरण करनेसे स्वर्ग तो घरके आंगनमें स्थितके समान है, राज्य, धन, रूप, यश, चक्रवर्तिपना और इंद्रपद हाथमें रक्खे हुएके समान है, कर्मोंकी निर्जरा क्षण-क्षण में होती है, नीरोगता भव-भवमें प्राप्त होती है, देव सेवक हो जाते हैं, सौभाग्यादि गुण स्वयमेव आ जाते हैं, कामदेवके समान पुत्र होते हैं, रतिके तुल्य स्त्री आ मिलती है, और क्या कहें। सगर चक्रवर्तिके समान समस्त ऐहिक सुखकी सामग्री तो अनायास ही मिल जाती है, जब कि मोक्षके सुख तक मिल जाते हैं। इसलिए सज्जनोंको धर्म पुण्यादिकके साधक आचरण तो करने चाहिए और जूआ, चोरी, परस्त्री गमनादि कुत्सित कार्य सर्वथा छोड़ देने उचित हैं।

सर्गांत मंगल।

कृष्ण दासको सुखद जो, जिन्हें नमत हैं इन्द्र ;
गये मुक्ति कैलाशसे, ध्यावहु आदि जिनेन्द्र।

इस प्रकार भट्टारक श्री रत्नभूषणाम्नायके अलंकार कवि ब्रह्मकृष्णदास विरचित संस्कृत विमलपुराणकी देह (आगरा) निवासी प० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिन्दी-वचनिकामें श्री विमलनाथके दीक्षा और ज्ञानकल्याणक, मधु प्रतिनारायण स्वयभू नारायण और धर्म बलभद्रकी ऋद्धिका वर्णन करनेवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

पांचवां सर्ग ।

कर्मभूमिकी आदिमें, भये ज्ञान दातार ;
शिव-मग द्योतक वे प्रभू, होहु सुमति करतार ।

अथानंतर वे सर्वज्ञ भगवान विमलवाहनस्वामी समस्त आर्य देशोंमें धर्मका व्याख्यान करते-करते एक समय उत्तर मथुरा नगरीमें पधारे । इंद्रकी आज्ञानुसार बारह गव्यूति प्रमाण समवसरण कुबेरने रचा । उसमें चारों दिशाओंमें चार तो रत्नखचित मानस्तंभ थे । हंस सारस आदि अनेक मनोहर पक्षियोंसे युक्त सरोवर थे । पांच वर्णके महारत्नोंकी जटित भूमि थी, धूलीसार नामक विशाल शाल था और उसके चारों तरफ जलसे भरी हुई कमलोंसे शोभित खाई थी, नाना तरहके फूलोंसे युक्त वाटिका थी, जिनमें क्रीड़ामें आसक्त देवांगनायें हर्षसे इधर-उधर डोलती थीं । सुवर्णका परकोटा था । चित्तको चुरानेवाली विशाल नाट्यशालायें थीं, जिनमें किन्नरियां नाचती-गाती थीं । रत्नोंकी बनी हुई वेदियां थीं और तीस हजार ध्वजा-दंड थे । इसके बाद उसमें चांदीका एक कोट था और उसके चारों तरफ कल्पवृक्षोंका वन था । उस समवसरणमें नाना मणियोंसे बनाये गये जिसमें बहुतसे घर हैं ऐसा एक किला था और उसके सामने बारह सभास्थान थे । सबसे पहले मुनियोंकी सभा थी, उसके बाद कल्पवासिनी देवांगनाओंकी सभा थी, तीसरी सभामें आर्यिकाएं, चौथीमें ज्योतिषियोंकी देवियां, पांचवींमें व्यंतरियां, छठीमें भवनवासियोंकी देवियां, सातवींमें भवनवासी, आठवींमें व्यंतर, नवींमें ज्योतिषी, दसवींमें कल्पवासी, ग्यारहवींमें मनुष्य और बारहवीं सभामें पशुगण बैठे थे । सबके बीचमें एक विशाल सिंहकूर्म नामका सिंहासन था, उसपर एक हजार आठ पांखुड़ियोंसे शोभायमान सुवर्णमयी कमलपर श्री १००८ विमलनाथ भगवान विराजमान थे । उस समवसरणमें बीस हजार तो सीढ़ियां थीं, चार प्राकार थे, पांच भित्तियां थीं, छत्तीस

गलियां थीं। देव-देवांगनाएं जय-जय शब्द बोल रहे थे। उस समवशरणमें जो प्राकार और भित्तियां थीं, वे भगवानके शरीरकी अवगाहनासे बारहगुणी ऊंची थीं और वेदियां चौगुणी थीं। भूमिमे पांच हजार धनुष ऊंचे चढ़नेपर श्री विष्टरकी शोभा देख सकते थे। साढ़े बारह करोड़ बाजोंके शब्द होते थे। इस प्रकार अन्य भी अद्भुत-अद्भुत शोभाएं और छह ऋतुओंकी आई हुई एक साथ समृद्धिको देखकर माली अत्यंत प्रसन्न हुआ और कुछ फल-फूल तोड़कर राजा मेरु और मंदरके सामने ले जाकर उपस्थित करते हुए उसने कहा---हे राजन्! किन्नरोद्यानमें श्रीविमलनाथ भगवानका समवसरण आया है, उनके प्रभावसे सब ऋतुएं एक साथ फलवती हो गई हैं और अपने पुष्परूपी नेत्रोंसे उनकी समृद्धिको देखनेके लिए एक साथ मिलकर आई हुई मालूम पड़ती हैं।

मालीके मुखसे श्रीजिनेंद्रका आगमन सुन मेरु और मंदर दोनों भाइयोंको परम आनंद हुआ। उन्होंने अपने वस्त्र-आभूषण उतारकर खुशीमें मालीको दे दिये। इसके बाद वे दोनों त्रिलोकीनाथ भगवानकी वंदनाके लिए गये। अतिशय भक्ति और महाविभूतिके साथ जल-गंधादिसे श्रीजिनेंद्रकी पूजा, स्तुति की और फिर नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें जा बैठ गये। श्रीजिनेंद्रने दिव्यध्वनिसे गृहस्थ और मुनियोंके चारित्रका वर्णन किया और फिर वे तत्त्व पदार्थ द्रव्य आदिके निरूपणको कहने लगे। श्रीजिनेंद्रने कहा—

यह जीव न तो किसीने पैदा किया है और न कोई इसका नाश कर सकता है। यह अनादिसे है और अनंत काल तक रहेगा, परंतु कर्मरूपी यंत्रके वशीभूत हो यह जगतमें नाना दुःखोंको भोगता हुआ घूमता-फिरता है। यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप है। सदाकाल जो पहिले जीया हो और वर्तमानमें जी रहा हो एवं भविष्यमें भी जीवे, उसीका नाम जीव है। व्यवहारनयसे यह जीव आठ ज्ञान, चार दर्शन इस प्रकार बारह उपयोगोंका स्वामी है, कर्मोंका करनेवाला है, अमूर्त्तिक होनेपर भी

अपनी वर्तमान देहके समान व्यापी और उसकी स्थिति तक ही एक पर्यायमें रहनेवाला है। अपने कर्मोंका
फल स्वयं भोगनेवाला है। इसके तीनों कालोंमें चार प्राण रहते हैं। निश्चयनयसे तो अनंत दर्शन, अनंत-
ज्ञान, अनंतसौख्य, अनंतवीर्य ये चार प्राण हैं और व्यवहारनयसे मन वचन काय श्वासोच्छ्वास आयु
स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और श्रोत्र ये दश प्राण हैं। उपयोगके दो भेद हैं---ज्ञान और दर्शन। चक्षु अचक्षु
अवधि और केवलके भेदसे दर्शनोपयोग तो चार प्रकारका है और मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्यय-
ज्ञान केवलज्ञान कुमति कुश्रुति और विभंगावधिके भेदसे ज्ञानोपयोगके आठ भेद हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष
भेदसे ज्ञान दो प्रकारका भी होता है। यह तो सामान्य रीतिसे जीवका लक्षण है, वह भी देहधारी अर्थात्
अशुद्ध जीवका लक्षण है। शुद्ध जीवका लक्षण तो अनंतज्ञान और अनंत दर्शन है। जिसमें तीनों लोक
और अलोकवर्ती समस्त पदार्थोंकी समस्त तीनों कालवर्ती पर्यायें एक साथ जानी जांय वह तो अनंत ज्ञान है वह
नित्य अविनाशी शुद्ध होता है। इसी प्रकार तीनों कालवर्ती समस्त पदार्थोंकी समस्त पर्यायें जिससे देखी
जांय वह अनंत दर्शन है वह भी शुद्ध और नित्य होता है। व्यवहारनयसे देहधारियोंके लाल काला श्वेत
पीला और हरा ये पांच रंगोंमें से कोई न कोई एक रंग रहता है और निश्चयनयसे जीवके कोई भी रंग नहीं है।
व्यवहारनयसे यह जीव जड़ कर्मके वशीभूत हो दुःख-सुख भोगता है और निश्चयनयसे कर्मरहित शुद्ध है।
सामान्यतया (व्यवहारसे) जीवके मीठा, तीखा, कषैला, कडुआ, नुनखरा और खट्टा यह छह रस हैं और
तीखे खारेको एक मान लेनेसे पांच रस ही हैं। सुगंध दुर्गंधके भेदसे गंधके दो भेद हैं। सामान्यतया
जीवके स्पर्शके आठ भेद हैं---स्निग्ध, रुक्ष, हलका, भारी, ठंडा, गरम, कोमल, कठोर। परंतु निश्चयनयसे
जीव बिना किसी प्रकारके बंधनसे बद्ध, ज्ञानी, शुद्ध, अखंड, अविनाशी है। यह जीव संकोच विकाशशाली
है। जितनी छोटी-बड़ी देहको पाता है, उसीके आकार हो जाता है। निश्चयनयसे इस जीवको न तो

किसी प्रकारकी वेदना ही होती है, न क्रोधादि कषाय तथा ह्रस्व दीर्घ विक्रिया ही होती है और न मरण आदि ही होते हैं। परंतु व्यवहारनयसे यह सात प्रकारके समुद्घात करता है--वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणांतिक, तैजस, आहारक और केवल। इस आत्माके लोकाकाशके समान असंख्यात प्रदेश हैं। स्थावर जीव ब्यालीस प्रकारके होते हैं--देव नारकी दो-दो प्रकारके, तिर्यंच चौंतीस तरहके, मनुष्य नौ तरहके और विकलेंद्रिय नौ तरहके इस तरह कुल मिलाकर अट्ठानवे प्रकारके संसारी जीव होते हैं। चौदह मार्गणा अथवा चौदह गुणस्थानोंकी अपेक्षा विचारा जाय, तो संसारी जीवके चौदह भेद भी होते हैं। एक तरहसे जीवोंके दो भेद भी हो सकते हैं-- संसारी और मुक्त, अथवा भव्य और अभव्य ये भी दो भेद हो सकते हैं। संसारी जीव मनसहित और मनरहितके भेदसे फिर दो प्रकारके भी होते हैं और फिर उनके त्रस और स्थावरके भेदसे भी दो भेद होते हैं। सिद्ध जीव साकार और निराकारके भेदसे दो तरहके भी कथंचित् हो सकते हैं, परंतु वस्तुतः उनमें कोई भेद नहीं है, सब समान हैं। वे सब ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंसे रहित अनंत ज्ञानादि आठ गुणोंसे सहित, अंतिम अपनी देहसे कुछ कम उँचाईवाले और लोकके अग्रपर रहनेवाले हैं। जिस समय यह जीव चारों प्रकारके कर्म बंधनोंको तोड़कर स्वतंत्र हो जाता है, उस समय सीधा ऊर्ध्वगमन करता है और आगे धर्मास्तिकायके अभाव हो जानेसे लोकके अग्रभाग पर ठहर जाता है। इनके सिवा अन्य जीव दिशा-विदिशाओंमें गमन कर भटकते फिरते हैं, इसमें संदेह नहीं है। अभव्य जीवोंमें भी बहुतसे तप तपकर ग्रैवेयक तक जाते हैं। निगोद पांच प्रकारके हैं और उनके अनंतानंत भेद हैं। अनंतानंत कालोंमें सिद्ध राशिसे अनंतानंत गुणी निगोद राशि है। सीप, कृमि, शंख, जोंक और कौड़ी आदि दो इंद्रिय जीव हैं। खटमल, कुंथु, यूक (डींगुर जूं) गोह आदिके तीन इंद्रियां होती हैं। षघट, मच्छ, डांस, मक्खी, पतंग आदि जीव चार इंद्रियवाले हैं। इसके सिवा अन्य तिर्यंच, देव, नारकी और मनुष्य चाहे वे जलमें रहते हैं, चाहे आकाशमें गमन कर सकते हैं, सब पांच इंद्रियवाले हैं।

इन इंद्रियोंमें संसारके अनंत कष्टोंको उत्पन्न कर दुख देनेवाला एक मन ही है, क्योंकि उसके वशमें न होनेसे ही नाना तरहके कर्मोंका बंध होता है। यदि मन अपने आधीन कर लिया जाय तो निस्संदेह मुक्ति होना कुछ भी कठिन न हो और जिन लोगोंका मन अपने अधीन नहीं, चंचल है, उनको संसार मिलना कुछ भी कठिन नहीं। उग्र उपवासादि तपका करना तो वाह्य तप है और असली तप तो चंचल मनका वश करना ही है, जो कि समस्त कर्मों में प्रधान है। करोड़ों वर्षों तक वाह्य तप तपनेमे जो फल मिल सकता है वही क्षणभर मनको वशकर परमात्माके ध्यान करनेसे मिल जाता है। जिसने आत्माके स्वरूपको पहचान लिया उसीने परमपद पा लिया उसीने उत्कृष्ट ज्योति प्राप्त की उसीने तप तपा उसीने श्रेष्ठ दान दिया और उसीने वास्तविक शास्त्रोंका स्वाध्याय किया। जो लोग अपनी आत्माका शुद्ध स्वरूप तो विचारते नहीं इधर-उधरकी मायामें फंसे रहते हैं वे तपकर अपनी देहको केवल कष्ट देते हैं उसमे अन्य कोई फल नहीं होता। इस प्रकार संक्षेपसे जीवतत्त्वका वर्णन कर दिया गया। अजीव तत्त्वको कहते हैं—

अजीवके पांच भेद हैं---पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल। इनमें पुद्गल तो मूर्तिक है और बाकी सब अमूर्तिक है। यह हीन अधिक होता रहता है इसलिए पुद्गल अन्वर्थ नामका धारक है। शब्द बंध संस्थान अंधकार छाया प्रकाश और चमक ये सब पुद्गलकी पर्याय हैं---अन्य लोग जिस प्रकार इन्हें पृथक्-पृथक् पदार्थ ही मानते हैं उस प्रकार नहीं है। जिस प्रकार मछलियोंको चलने-फिरनेमें जल कारण है उसी प्रकार चारों गतियोंमें चलने-फिरनेवाले इन जीवोंको और पुद्गल द्रव्यको गमन करनेमें जो सहायता करनेवाला है वह धर्म द्रव्य है। जिस प्रकार मार्गमें चलते हुए पथिकोंको वृक्षोंकी छाया उदासीन कारण है उसी प्रकार जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें जो कारण हो वह अधर्म द्रव्य है। आकाशके दो भेद हैं---एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। जीव पुद्गल आदि पदार्थोंको रहनेके लिए जो अवकाश दे वह लोकाकाश है और उससे भिन्न अलोकाकाश है।

पदार्थोंको नवीन और पुरातन कर देनेमें कारण तो व्यवहारकाल है और रत्न-राशिके समान लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर एक-एक अणु रूपसे स्थित है वह निश्चयकाल है। इसके प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं, इसीलिए अकाय कहा जाता है। एक जीव, धर्म और अधर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं, आकाशके अनंत प्रदेश हैं और पुद्गलके संख्यात असंख्यात और अनंत तीनों तरहके प्रदेश हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश बहुप्रदेशी होनेसे अस्तिकाय कहलाते हैं। जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इनमें पुण्य और पाप दो मिला देनेसे नौ पदार्थ हो जाते हैं। द्रव्यास्रव और भावास्रवके भेदसे आस्रवके दो भेद हैं। आत्माके जिन भावोंसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका बंध होता है, वे तो भावास्रव हैं और वे मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योग हैं और जो ज्ञानावरणादि कर्मोंका आना है, वह द्रव्यास्रव है। द्रव्य और भावके भेदसे बंध भी दो प्रकारका है। जिन मिथ्यादि दुर्भावोंसे कर्म बंधते हैं वह तो भाव बंध है और ज्ञानावरणादि कर्म तथा आत्माके प्रदेशोंका एक क्षेत्रावगाहन रूप बंध होना है वह द्रव्य बंध है। उस बंधके चार भेद हैं---प्रकृतिबंध प्रदेशबंध स्थितिबंध और अनुभागबंध। उसमें प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध तो योगोंके द्वारा होते हैं बाकी अनुभाग और स्थितिबंध कषायोंसे उत्पन्न होते हैं। संवर भी द्रव्य संवर और भाव संवरके भेदसे दो प्रकारका है। आत्माके जिस भावसे कर्मोंका आस्रव रुक जाय वह तो भाव संवर है और व्रत गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षादिका आचरण और परीषहोंके जयसे जो आते हुए कर्मोंका रुक जाना है वह द्रव्य संवर है। निर्जरा दो तरहकी होती है---सविपाक और अविपाक। कर्मोंका फल देकर जो आत्मासे पृथक् हो जाना है वह तो सविपाक निर्जरा और बिना फल दिये ही कर्मोंका झड़ जाना अविपाक निर्जरा है। इनमें सविपाक निर्जरा तो प्रत्येक संसारी जीवके प्रतिक्षण हुआ करती है और अविपाक निर्जरा कभी-कभी किसी-किसीके होती है। द्रव्य-मोक्ष और भाव-मोक्षके भेदसे मोक्ष भी दो प्रकारका है। उनमें जिन आत्म-भावोंसे कर्मोंका सर्वथा क्षय हो

जाता है, वह तो भाव मोक्ष है और ध्यानादिके द्वारा कार्माण वर्गणाओंका आत्मासे सर्वथा पृथक्त्व हो जाना द्रव्य मोक्ष है। जिनके परिणाम शुभ होते हैं, उनके पुण्य और जिनके परिणाम खोटे होते हैं, उनके पाप कर्मोंका बंध होता है। साता रूप सुख, श्रेष्ठ नाम, समीचीन गोत्र और शुभ आयु ये तो पुण्यके प्रभावसे प्राप्त होते हैं और असाता रूप दुःख, अशुभ नाम, असमीचीन गोत्र और नरक तिर्यंच आयु ये पापके प्रभावसे मिलती है। इस प्रकार हे मगधाधिप श्रेणिक! उन विमलनाथ भगवानने द्रव्य, तत्त्व और पदार्थोंका स्वरूप निरूपण किया। इसके बाद वे मोक्षमार्गका निरूपण करने लगे।

मोक्षका मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। निश्चयनयसे जीव इन तीनोंस्वरूप ही है, परंतु अनादि कालसे कर्मोंके वशीभूत होनेके कारण दुःख उठा रहा है। जिस प्रकार बिना दाढ़ोंके केहरी मत्त हाथियोंको नहीं मार सकता, उसी प्रकार मुनि बिना श्रेष्ठ ध्यानके कर्मोंका नाश नहीं कर सकता। ध्यानके चार भेद हैं---आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल। इसमें आर्त रौद्र दो ध्यान सर्वथा छोड़ देने लायक हैं इनसे संसार बढ़ता है। शेष दो धर्म्य और शुक्ल मोक्षसुखके देनेवाले हैं, इसलिए करने उचित हैं। स्त्री-पुत्र खाना-पीना आदिका चिंतवन तो आर्तध्यान है और बांधने आदिसे उत्पन्न ध्यानका नाम रौद्रध्यान है। जैनसिद्धांतका पठन-पाठन, व्रतोंका आचरण, भावनाओंका चिंतवन, दान और तपका आचरण धर्म्यध्यान है। संकल्प-विकल्पोंसे रहित, शुद्ध आत्माके स्वरूपका विचारना शुक्लध्यान है और उसे निर्ग्रंथ सर्वथा परिग्रहरहित मुनिगण ही कर सकते हैं। ध्यानकी सिद्धि पर्वतपर, गुफाओंमें, मरघटमें, विवरोंमें, शिलापर और मठ-मंदिर आदि शून्य स्थानोंमें होती है। पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानोंको स्थिर मनकर समस्त परिग्रहोंसे रहित हो ध्याना चाहिए। नाभि कमलमें स्फुरायमान ज्योतिवाले, सूर्य समान देदीप्यमान आत्मस्वरूपका जो चिंतवन करना है, वह पिंडस्थध्यान है अथवा अपने स्वरूपका मस्तकमें, हृदयमें, गलेमें वा हाथोंमें जो चिंतवन करना है वह भी पिंडस्थध्यान है

'अर्हं' इन दो बीजाक्षरोंका वा जो 'ओम्' आदि एकाक्षरादि मंत्रोंका एकाग्र चिंतवन करना है वह पदस्थध्यान है। आठ कर्मोंसे रहित भगवान वा प्रातिहार्यादि सामग्रीसे भूषित घातिकर्म रहित शुक्लवर्णके धारक श्री अर्हद् भगवानका जो चिंतवन करना है वह रूपस्थध्यान है। कामविकार मन राग-द्वेष मन-वचन-कायकी मत्सरता ममता शरीरसंस्कार धन-धान्य कषायभाव और व्यापारादिसे रहित न तो मैं ही किसीका हूं और न मेरा ही कुछ है। इस प्रकार जो निःसंग हो 'सो ऽहं' 'वह मैं हूं' इस प्रकारका चिंतवन करना है वह रूपातीत ध्यान है। जिस प्रकार शरत्कालीन चंद्रमाकी चांदनी अमृतपानके तुल्य प्रिय लगती है उसी प्रकार यह निश्चल भ्रांतिरहित ध्यान भी शीतल और सुखद मालूम पड़ता है। जो योगी इस अनुपम ध्यानका आचरण करता है वह निश्चयसे मोक्ष-सुखको भोगता है संसार उसके रहता ही नहीं है। आर्तध्यानसे तिर्यञ्च गति होती है रुद्रध्यानसे नरक मिलता है धर्म्यध्यानसे स्वर्ग मिलता है और शुक्लध्यानसे मोक्ष प्राप्त होती है। इत्यादिकी श्रद्धासे सम्यग्दर्शन निर्मल होता है सम्यग्दर्शन शुद्ध होनेसे कर्मोंका क्षय होता है और कर्मोंके क्षय हो जानेसे मोक्षसुख मिल ही जाता है यह निश्चय है। इसलिए जो लोग सुख चाहते हैं उन्हें तत्वादिकी चर्चा करना चाहिए धर्म्य और शुक्ल-ध्यानोंका आचरण करना उचित है। कारण अंतर्मुहूर्त पर्यन्त भी श्रेष्ठ ध्यान कर लिये जांय तो करोड़ों कर्मोंका क्षय हो जाता है।

इस प्रकार केवली भगवानके कहे हुए तत्वोपदेशको सुनकर वे मंदर और मेरु दोनों राजपुत्र बहुत ही आनंदित हुए और श्रीजिनेंद्रको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने घर गये।

इस प्रकार भट्टारक श्री रत्नभूषणाम्नायके अलंकार कवि ब्रह्मकृष्णदास विरचित संस्कृत विमलपुराणकी टूंडला (आगरा) निवासी प० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिन्दी-वचनिकामें मंदर और मेरु नामक राजपुत्रोंको धर्मोपदेशका वर्णन करनेवाला पांचवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा सर्ग।

बहिरंतर लक्ष्मी अधिप, कोटि चंद्रतैं शीत;
वंदों मन-वच-काय करि, आदिनाथ जगमीत।

अथानंतर फिर वे दोनों राजपुत्र मंदर और मेरु भक्ति-भावसे उत्साहित हो जिनेंद्र भगवानकी वंदनाके लिए चल दिये और समवसरणमें पहुंचकर भगवानकी गद्य-पद्यमय स्तुति कर अपने स्थानपर बैठ गये। इसके बाद मेरु उठा और विनयपूर्वक भगवानसे प्रार्थना की—हे जगत्पूज्य इंद्र धरणींद्रोंसे सेवित! भगवन्! मैं अपने भाई मंदरके पूर्वभव सुनना चाहता हूं कृपाकर कहिये। उत्तरमें भगवानने भव्योंको प्रतिबोध देनेवाली दिव्य-ध्वनिसे कहा—हे वत्स। तैंने अच्छा प्रश्न किया। इसके उत्तर सुननेसे असंख्य जीवोंको सुख प्राप्त होगा। तू और तेरा भाई मंदर दोनों ही मोक्षगामी जीव हैं. अतएव सावधान हो सुनो—

इसी जंबूद्वीपके सुमेरुकी पश्चिम दिशामें विदेह नामक क्षेत्र है, उसमें सीतोदा नामकी एक नदी है और उसके तटोंपर सौ महा चैत्यालय विराजते हैं। उस नदीके उत्तर तटपर गंधमालिनी नामका एक देश है। उस देशमें वीतशोका नामकी नगरी है, जो सदा आये हुए देव-देवांगनाओंसे सुशोभित रहती है। उस नगरके चारों तरफ खाई परकोट हैं। उसका राजा किसी समय वैजयंत था और उसकी रानीका नाम सर्वश्री था, जो कि साक्षात् लक्ष्मी सरीखी जान पड़ती थी। उन दोनोंके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे और उनका नाम संजयंत और जयंत रक्खा गया था। एक दिन विहार करते-करते तीर्थंकर स्वयंभू वहां आये और उनसे धर्मका व्याख्यान सुन वैजयंत तथा उनके दोनों पुत्रोंको वैराग्य हो गया, जिससे वे दिगंबर दीक्षा ले मुनि हो गये। घोर तप तपनेके कारण मुनिराज वैजयंतको घातिया कर्मोंके नष्ट हो जानेसे केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गई। उस समय चारों

निकायके जीव उन सर्वज्ञकी पूजा करनेके लिए आये। उनमें धरणेंद्रका वैभव देखकर मुनि जयंतने अग्रिम भवमें धरणेंद्र होनेका निंदित निदान बांधा और उसके अनुसार मरकर वे धरणेंद्र हो गये।

जयंतके बड़े भाई संजयंत किसी समय महा मनोहर पुरी वीतशोकाके भीमदर्शन नामक मरघट (श्मशान) में सात दिनका योग धारण कर प्रतिमा योगसे विराजमान थे और राजा विद्युद्दंष्ट्र अपनी प्राणवल्लभाओंके साथ भद्रशाल वनमें मनमानी क्रीड़ा कर अपने गगनवल्लभ नगरको लौट रहा था कि अचानक ही उसकी दृष्टि मुनिराज संजयंतपर पड़ी। उन्हें देख उसके हृदयमें पूर्व जन्मका वैर जाग उठा। वहांसे उन्हें उठा उसने भरतक्षेत्रके दक्षिण वैताढ्य पर्वतके किसी वरुण नामक शिखरपर ला धरा। जिस स्थानपर हरिद्वितीय १ चंद्रवेगा २ गजवती ३ कुसुमवती ४ और सुवर्णवती ५ पांच नदियोंका संघट्ट हुआ है, विद्युद्दंष्ट्रने सायंकालके समय मुनिराज को छोड़ दिया और अपने नगर चला आया। प्रातः होते ही मुनिराजको मारनेके लिए उसने एक ढोंग रचा और लोगोंमें प्रसिद्ध कर दिया—विद्याधरो! आज रात्रिको स्वप्नमें मैंने विस्तीर्ण शरीरका धारक एक राक्षस देखा है। वह नियमसे हमारा क्षय करनेवाला है, इसलिए उसके प्रति यही कर्तव्य है कि जब तक वह हमारा क्षय करे, उसके पहिले हम उसे यमराजकी गोदमें पहुंचा दें।

विद्युद्दंष्ट्रके ऐसे वचन सुन विद्याधरोंको विश्वास हो गया। वे अपने-अपने शस्त्र लेकर मुनि संजयतके पास गये और उन्हें राक्षस जान मार गिराया, परंतु मुनिराज अपनी शांतिसे विल्कुल विचलित न हुए। वे शुद्ध आत्माके ध्यानमें लगे ही रहे, इसलिए उन्हें उस समय केवलज्ञानके साथ-साथ मोक्षपद प्राप्त हो गया। सो ठीक ही है—मनको वशीभूत करनेवाले सज्जनोंके विघ्न भी उत्सव हो जाते हैं। जिस प्रकार लकड़ीसे अग्नि म्यानसे तलवार स घी पृथक् किया जाता है, उसी प्रकार उस समय उनका निर्मल आतमा शरीरसे पृथक् कर दिया गया। मुनि संजयत उस समय मायारहित अतींद्रिय सुखका अनुभव करने लगे और जिस जगह एक सिद्धमें अनंत सिद्ध

विराजते हैं वहीं विराजने लगे। अब तो मोक्षकल्याणक मनानेके लिए देव देवेंद्र अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर आने लगे और उनका गुणगान करने लगे। उस समय जयंतका जीव धरणींद्र भी आया और अपने भाईकी आकृति और विद्याधरोंकृत उपसर्ग विचार अति क्रुद्ध हुआ। उसने उसी समय नागपाशसे उन लोगोंको बांध लिया। महा क्रोधसे लाल नेत्र कर वह भयप्रद वचनोंको कहने लगा। उसने कहा--अरे मूर्ख विद्याधरो! तुम लोगोंने मेरा मदरहित निर्मल ध्यानस्थ भाई क्यों मार डाला? उसने तुम लोगोंका क्या अपराध किया था। इस समय मेरे भाईको मारनेसे तुमने अपराध किया है इसलिए तुम सबको नाग-पाशके वज्र प्रहारसे मार डालूंगा। काकको मारनेवाले पुरुषको काक जब अपनी चोंचोंसे घायल कर देते हैं तब मुझ सरीखे पुण्यवान किस प्रकार वैरीको देख सकते हैं। उन कुकर्मी विद्याधरोंको नाना प्रकारके त्रास देकर उस धरणींद्रने सोचा कि इन सबको या तो समुद्रमें जाकर डुबो दूं या पहाड़के नीचे पटक दूं या वज्रसे मारकर दिशाओंमें बलि दे दूं अथवा जिस प्रकार इन लोगोंने मेरे भाईको शस्त्रोंसे मारा है, उसी प्रकार शस्त्रोंसे इनके भी खंड-खंड कर दूं। धरणींद्रका ऐसा व्यवहार देखकर दुःखित विद्याधर स्वस्थ हो नम्रतापूर्वक आदिसे अंत तक सब वृत्तांत कहकर बोले—हम लोग बिल्कुल अपराधरहित हैं। हमें तो विद्युद्दंष्ट्र दुष्टने ठग लिया, इस-लिए पापमें प्रवृत्त हुए। जिस प्रकार चंद्रमा या सूर्यके सामने तारा कोई चीज नहीं होता और जिस प्रकार मेरु पर्वतके सामने पर्वतोंका सामान्य ढेर (गंडशैल) अति क्षुद्र होता है, उसी प्रकार शक्तिशाली आपके सामने हम क्षुद्र हैं। जिस प्रकार देव-मंदिर बिना शिखरके और बगीचा बिना केलेके पेड़ोंसे शोभित नहीं होते, उसी प्रकार न्यायके बिना पुरुषकी भी शोभा नहीं होती। इसलिए हे देव! आप धर्माधर्मको जाननेवाले हैं, न्यायमार्ग देखकर जो अपराधी है, उसे दंड दीजिये क्योंकि समझदार (पंडित) लोग न्यायका ही अनुसरण करते हैं। यदि आप समर्थ होकर बिना विचारे इच्छानुसार करेंगे तो कीजिये उसका भी प्रतीकार नहीं है कारण देव तो निरंकुश होते

ही हैं। विद्याधरोंकी ऐसी नम्रतापूर्ण प्रार्थना सुन धरणींद्रने उन्हें तो छोड़ दिया और केवल विद्युद्दंष्ट्रको उसके पुत्र स्त्री भाई वंधु सहित वांध लिया एवं उन्हें समुद्रमें पटकनेकी तैयारी करने लगा। इतनेमें आदित्याभ नामका लांतव स्वर्गका देव आकर उससे बोला–हे धरणींद्र ! इसने जो अपराध किया है, उसे क्षमाकर मेरे आग्रहसे इसे छोड़ दो। तुम सरीखे अतुल बलशालियोंको क्षुद्र पुरुषपर क्रोध न करना चाहिए। देखो ! सिंह ईर्ष्या करनेवाले शृगालको कभी नहीं मारता। पहिले आदिनाथ भगवानके समयमें तुम्हारे वंशके लोगोंने इन विद्याधरोंको असंख्य विद्यायें दी थीं इसलिए पहिले जिस प्रकार दूधसे सींचकर बड़े किये गये विषवृक्षको भी नहीं काटते, उसी प्रकार इनको भी नष्ट न करना चाहिए। आदित्याभकी यह बात सुनकर धरणींद्रने कहा–भाई ! तुम्हें इस दुष्टकी कार्यवाही नहीं मालूम है इसलिए ऐसा कह रहे हो। इस पापीने तपस्वी शांत मेरे बड़े भाई संजयंतको विना अपराधके मार डाला है इसलिए यह अवश्य मारने योग्य है। आपको मुझे न रोकना चाहिए। उत्तरमें आदित्याभने कहा–मैंने तुमसे व्यर्थ याचना की क्योंकि यांचाभंग हो जानेपर मान नहीं रहता मान न रहनेसे पुरुष तृणके समान नीच समझा जाता है लोकमें निंदनीय होता है और असमर्थ होनेसे कुछ उपकार अपकार न कर सकनेके कारण चित्रित पुरुषके समान हीन समझा जाता है। ऐसे मानहीन पुरुषको जिस प्रकार बत्ती बुझ जाने पर दीपकको प्रकाश छोड़ जाता है उसी प्रकार लक्ष्मी भी छोड़ जाती है। जिस प्रकार बुद्धिरहित पुरुषको प्रतिभा तिलांजलि दे देती है उसी प्रकार मानरहित पुरुषको स्वाभिमान भी छोड़ जाता है। इससे विपरीत जिस प्रकार गुरुको विद्यार्थी और गुणी पुरुषको कुलीन स्त्री स्नेहसे पसंद करती है उसी प्रकार लक्ष्मी भी मानी पुरुषको आदरके साथ वरती है। परंतु धरणींद्र तुम शिष्ट पुरुष हो इसलिए तुमसे किया गया मेरा यांचाभंग भी अधम पुरुषमें की गई सफल याचनासे कहीं अच्छी ही है।

सर्गांत मंगल।

जिस महापुरुषने परमतप तपकर मोक्षलक्ष्मीको पा लिया, जिसके चरणकमलोंकी देवोंने आकर सेवा की और जिसको मुनि भी सेवते हैं, वह हमारी (भव्य लोगोंकी) रक्षा करे।

इस प्रकार श्रीमद् भट्टारक ज्ञानभूषणकी आम्नायके भूषण श्री ब्रह्मकृष्णदास द्वारा विरचित संस्कृत विमलपुराणकी टेहू (आगरा) निवासी पं० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिन्दी-वचनिकामे वैजयत, संजयंत, जयतका दीक्षा-ग्रहण, सजयंतका उपसर्ग सहकर मुक्तिगमन, जयंतका धरणींद्र पद प्राप्ति और वहासे आगमन तथा आदित्याभका समागम वर्णन करनेवाला छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवां सर्ग।

जगपालक पुण्यद सुभग, जिन्हें नमत हैं देव ;
अघनाशक श्रीमान् जिन, करूँ तुम्हारी सेव।

अथानंतर आदित्याभने धरणींद्रसे कहा—भाई ! मेरे युक्तियुक्त वचनोंको तुम सुनो। शल्यके समान भव भव दुःख देनेवाले इस वैरको करनेसे कोई लाभ नहीं। इससे जीव सदा परस्पर एक दूसरेका घात किया करते हैं। इस अपार संसारमें भ्रमण करते हुए विद्युद्दंष्ट्र क्या तेरा भाई नहीं हुआ है ? यहां न तो कोई बंधु है, न कोई वैरी है और न कोई उपकार वा अपकार करनेवाला है। सब अनेक बार पिता, पुत्र, स्त्री, माता स्वजन परिजन हुए हैं। वस्तुतः देखा जाय, तो जितने भी जीव शत्रु दीख पड़ते हैं वे सब माता पिता और भाई हैं। पूर्व जन्ममें तुम्हारे भाई संजयंतने अपराधी विद्युद्दंष्ट्रको महाक्रोध कर दंड दिया था उसी वैरके वशीभूत हो उसने विद्याधर हो जातिस्मरण हो जानेसे तुम्हारे भाई संजयंतको दुःख दिया है।

इसी जन्ममें इसने ऐसा नहीं किया है बल्कि गत चार जन्मोंसे यह तुम्हारे भाईको मारता चला आया है। इस जन्ममें तो इस विद्युद्दंष्ट्रको मैं उपकारी समझता हूं, जिससे उपसर्ग सहकर यह मुनि मुक्ति पधार गये। यदि कोई पापी जीव किसीका अपकार करे और उस अपकारसे हित हो जाय तो बुद्धिमान उसे अपकारीकी जगह उपकारी ही समझते हैं। तिरस्कृत होकर भी बुद्धिमान विकारको प्राप्त नहीं होते जिस प्रकार चंदन छिन्न-भिन्न होकर भी सामनेवालोंको सुगंधित ही करता है, जिस प्रकार अगुरु जलानेसे अपने श्रेष्ठ गुणोंका ही प्रकाश करता, साधु पुरुष दुर्जनोंसे दुःखित किये जानेपर भी अपने सारल्य गुणको कभी नहीं छोड़ते। देखो! जिसप्रकार ईख ज्यों-ज्यों पेली जाती है, त्यों-त्यों मीठा रस देती चलती है, उसी प्रकार बुद्धिमान सज्जन प्राणनाश होने पर भी अपने हृदयमें विकार नहीं लाते। इसलिए धरणींद्र! तुम अब इस वैरको यहीं रहने दो नहीं तो भला बताओ! पूर्व वैरसे जो दुःख उत्पन्न हुआ है उसका क्या प्रतीकार हो सकता है? आदित्याभका यह वचन सुन धरणींद्रने पूर्व वैरकी कथा पूछी, उत्तरमें आदित्याभ बोला—

एक लाख योजन विस्तृत जंबूद्वीपमें धनुषके समान आकृतिका धारक भरत क्षेत्र है। उसमें महा मनोहर सिंहपुर नामका एक नगर है। उसका राजा किसी समय सिंहके समान पराक्रमका धारक सिंहसेन था और उसकी स्त्रीका नाम रामदत्ता था। उसके वेदज्ञ उत्तम ब्राह्मण श्रीभूति नामक मंत्री था, जो कि लोगोंमें अपने सत्य वचनके लिए प्रसिद्ध था। एक दिन उसने लोगोंको दिखलानेके लिए प्रतिज्ञा की कि यदि मैं कभी झूंठ बोलूंगा तो अपना गला काट डालूंगा। इसी बातकी पुष्टिमें उसने अपने गलेमें एक छुरी (छोटी कटारी या तलवार) बांध ली और बहुत ही कम बोलने लगा। अब तो उसकी और भी प्रसिद्धि हो गई। यहां तक कि राजाने प्रसन्न हो उसका नाम सत्यघोष रख दिया।

पद्मखंड नगरमें सुदत्त नामका एक सेठ रहता था। वह बड़ा ही धर्मात्मा और गुणी था। उसकी

सेठानीका नाम सुमित्रा था और उसके भद्रमित्र नामका पुत्र था। एक दिन वह बहुतसे सेठ पुत्रोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिए वगीचेमें गया। वहां अवसर पाकर सेठ पुत्रोंने उससे कहा---मित्र! जो वैश्यपुत्र होते हैं, वे व्यवसाय कर अपनी आजीविका चलाते हैं, परंतु तुम विना किसी प्रकारके रोजगारके घरमें ही रहते हो। हम लोग रत्नद्वीपको जा रहे हैं, इसलिए तुम्हें भी साथ चल देना चाहिए। देखो! जो पुत्र कुछ धन तो पैदा नहीं करता और केवल खर्च ही करता है, उससे माता-पिताको कोई लाभ नहीं होता जिस प्रकार कि उग्र तप तपनेसे भी क्रोधी मुनियोंको कोई लाभ नहीं होता। सेठपुत्रोंकी यह बात सुन भद्रमित्र ताली पीटकर हंसा और बोला—भाई! यह क्या? दरिद्रके साथ मुनिकी कहीं उपमा दी जा सकती है? यह सुन सेठ पुत्र बोले---भाई! इस विषयकी कथा है, हमने उसे मुनिराजके मुंहसे सुना है। उसे तुम सुनो, तुम्हें हमारी बातका निश्चय हो जायगा।

समुद्रके तटपर एक स्तवकग्लुंछ नामका नगर है, उसका स्वामी किसी समय ऐरावण था, उसके छह हजार रानियां थीं, पांच सौ वीरसेन आदि पुत्र थे उन सबको शिकार खेलनेका शौक था, वे सब रण करनेमें चतुर थे। उस राजाके प्रयाण करते समय एक लाख तो भेरी बजती थी और उतने ही पटह शब्द करते चलते थे। जिस समय वह सिंहासनपर वैठता था, वह इंद्र, शेष नाग अथवा मेरुके समान शोभित होता था।

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें अलकपुर नामका एक नगर है, उसका राजा महाकच्छ था और रानीका नाम-दामिनी था। उन दोनोंके रूप-लावण्यकी खानि प्रियंगुश्री पुत्री थी। एक दिन यौवनसे भूषित उसको देख कर राजाको चिंता हुई और वह सोचने लगा कि यह किसको देनी चाहिए। उसने उसी समय एक ज्योतिषीको बुलाया। उससे स्तवकग्लुंछ नगरके अधिपतिको उसका भावी पति जाना, अतएव उसको अपने नगरमें लाने का यत्न किया। राजा महाकच्छने छोटे कानोंका एक मायामयी घोड़ा बनाया और उसपर चढ़ स्तवकग्लुंछ नगरको चल दिया। महाकच्छ जब उस नगरके पास पहुंचा, तो आश्चर्यमें डूब गया। वह सोचने लगा---यह

कैलाश पर्वत है, वा हिमालय अथवा देवनगर है। इसके बाद जब हजार स्तंभतोरणोंसे युक्त, बीस लाख योद्धाओंसे रक्षित पूर्व द्वारपर पहुंचा, तो उसने नगरके भीतर घुसना अपनी शक्तिके बाहर समझा, इसलिए वहांसे लौटकर वनमें क्रीड़ा करने लगा। वीरसेनादि राजपुत्र उस समय वहां क्रीड़ाके लिए आये थे। जब राजपुत्रोंने उसे वहां देखा, तो कौतुकसे पूछा---आप कौन हैं? कहां रहते हैं और यह घोड़ा किसका है? जवाबमें विद्याधरने कहा---मैं अलकापुरीसे आया हूं। यह घोड़ा मेरा है। इसके बाद वीरसेनने कहा---घोड़ा तो देखनेमें नटखट मालूम होता है। यदि इसे हमें थोड़ी देरके लिए दे दो, तो इसकी पटुता देख लें और पसन्द आ जानेपर मूल्य देकर ख़रीद भी लेंगे। विद्याधरने इस बातसे सहमत हो अपना घोड़ा दे दिया, परंतु ज्यों ही वीरसेन घोड़ेपर चढ़ा, घोड़ेने पटक दिया। इसके बाद अन्य पुत्र भी चढ़े, परंतु सबकी समान ही दशा हुई--किसीके हाथ टूट गये और किसीके पैर टूट गये। जब यह खबर ऐरावणको लगी, तो वह भी वहां आया। वह घोड़ेको दुर्धर जान घोड़ेपर चढ़ गया। इस राजाने पहले कैलाश पर्वतपर विराजमान श्री आदिनाथ भगवानको प्रतिदिन आठ हजार बार साष्टांग नमस्कार किया था, उसीके पुण्य प्रतापसे यह घोड़ा कीलित हुएके समान इनको न गिरा सका। महाकच्छने जब इनका यह पराक्रम देखा, तो वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। महाकच्छने विनयावनत हो अपनी कन्या विवाहनेकी बात कही। ऐरावणने जवाबमें कहा कि इक्ष्वाकुवंशके लोग स्त्रीके लिए दूसरी जगह नहीं जाते इसलिए कुलक्रमका उलंघन कर मैं भी तुम्हारे यहां नहीं जा सकता। हां! यदि तुम कन्या यहां ले आओ, तो विवाह कर सकता हूं।

ऐरावणके ऐसे वचन सुन महाकच्छ अपने नगरको आया और कन्या लेकर स्तवकग्लुंछ नगरको लौट ही रहा था कि एक अलकपुरका ही वासी वज्रसेन नामका विद्याधर प्रियंगुश्रीके रूपकी प्रशंसा सुन उसपर आसक्त था। वह कन्याको हरण करनेके लिए महाकच्छके पीछे-पीछे आ पहुंचा और ऐरावणके नगरके समीप ही

दोनोंमें मुठ भेड़ हो गई। ऐरावणने जब रणभेरीका शब्द सुना तो वह वहां आया और वज्रसेनको जीतकर प्रियंगुश्रीके साथ विवाह कर आनंदसे रहने लगा। वज्रसेन अपमानित हो तपस्वी हो गये और हजार वर्ष बाद स्तवकग्लुंछ नगरमें आए। एक दिन ध्यानमें लीन उन मुनिको देखकर एरावणके लड़कोंने यह कहते हुए कि---इसने पहिले हमारे पिताके साथ युद्ध किया था अब बचकर कहां जायगा? उन्हें खचेड़ डाला। बस! कर्मोदयसे मुनिकी शांतिभंग हो गई, वे क्रोधके आवेशमें आ गए इसलिए वामस्कंधसे एक अग्निका पुतला निकला और उससे राजा प्रजा समस्त प्राणी जल कर भस्म हो गये इसके बाद मुनिको भी उस पुतलेने जला डाला और मरकर वे नरक पहुंचे।

भाई भद्रमित्र! इसीलिए क्रोधी मुनि और अर्थोपार्जन न करनेवाले पुरुषकी बराबर उपमा दी है, क्योंकि दोनों ही अपने-अपने धनका नाश कर देते हैं। सेठपुत्रोंकी बातका भद्रमित्रपर असर हो गया। उसने पिताके पास आकर मित्रोंके साथ धन उपार्जन करनेके लिए रत्नद्वीप जानेकी इच्छा प्रकट की। पिताने उत्तरमें कहा---बेटा! हमारे पास अपरिमित धन है, तुम्हें उसके लिए परदेश जानेकी क्या आवश्यकता है? तुम एक ही तो मेरे लड़के हो और सो भी अभी छोटी ऊमर है, तुम्हें परदेश भेजकर मैं क्या योगी हो पृथ्वीपर घूमूंगा? इस प्रकार पिताने यद्यपि उसे निषेध किया, तो भी वह उनके वचनोंकी कुछ भी पर्वाह न कर समुद्रके रास्ते रत्नद्वीप को चल दिया। वहां रहकर वह सिंहपुरमें आया और बहुतसी भेंट ले सत्यघोष मंत्रीसे आदरके साथ मिला। उसके बाद उसने मंत्रीसे पूछा कि यदि आपका स्नेह हो, तो मैं यहां ही सदा निवासके लिए आ जाऊं। उत्तरमें सन्मानके साथ सत्यघोषने कहा—हां! हां! तुम अपने माता-पिताको शीघ्र ही ले आओ। मंत्रीके वाक्यसे संतुष्ट हो भद्रमित्र सात बहुमूल्य रत्नोंको उसके (सत्यघोषके) हाथमें देकर पद्मखंडपुर चला आया। वहांसे उसने माता पिता स्त्री पुत्र पशु धन-धान्य आदि सबको साथमें लिया और शीघ्र ही सिंहपुर लौट आया। इसके बाद जब

उसने सत्यघोषसे अपने सातों रत्न वापिस मांगे, तो वह क्रोधसे लाल आंखें कर बोला---रे पापी, तैंने मेरे हाथमें कब रत्न दिये थे। निश्चय आज तेरा अंत आ गया है, जो मेरे नाम दोषारोपण कर रहा है। जवाबमें भद्रमित्रने रत्नोंके नाम रूप रंग आदि बताकर कहा कि वे रत्न मैंने रत्नद्वीपसे लाकर तुम्हें सौंपे थे। इसके बाद सेवकोंने यह कहकर कि 'जिनका बहुत धन नष्ट हो जाता है, वे पागल हो जाते हैं' उस भद्रमित्रको मुक्के घूसोंसे मारकर अर्धचन्द्र (गलबाहीं) दे घरसे बाहर निकाल दिया। अपना द्रव्य इस प्रकार अपहरण होता देख भद्रमित्र महा दुःखित हुआ। वह शोकसे रोता-पीटता राज-दर्बारमें पहुंचा। सत्यघोष भी वहां पहुंचा और यह कहकर कि 'धन नष्ट हो जानेसे पागल हो यह बकता फिरता है' अपनी सत्यता प्रगट की, यहां तक कि उस लोभी नीच सत्यघोषने अपनी निर्दोषिता प्रगट करनेके लिए राजाके सामने मिथ्या शपथ भी खा डाली। अब तो भद्रमित्र बिलकुल ही हताश हो गया। वह प्रतिदिन प्रातःकालकी होनमें पेड़पर चढ़कर करुण क्रंदन करने लगा और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा कि बिना अपराध इस दुष्ट ब्राह्मणने मुझे ठग लिया है। मैं क्या करूं? कहां जाऊं? किसके सामने जाकर फरियाद करूं। हे सत्यघोष! सिंहसेन राजाके प्रसादसे तेरे क्या नहीं है। छत्र और सिंहासन छोड़कर समस्त राज्य ही तेरा है। हे ब्राह्मण झूठ बोलनेसे धर्म, यश, बड़प्पन आदि सब गुण चले जाते हैं, आश्चर्य है कि यह सब जानकर भी ऐसे बड़े भारी पापको क्यों तू कर रहा है। मेरी तेरे साथ दुश्मनी नहीं है, तो भी न मालूम सदाचारको तिलांजलि देकर तू मेरा धन क्यों हजम कर रहा है। एक दिन रात्रिके पश्चिम भागमें वह ब्राह्मण ऐसे ही चिल्ला रहा था कि उसे सुन रानी गुणवतीने अपने मनमें सोचा---यह पागल नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि यह सदा एक ही बात चिल्लाता है, इसलिए इसका ठीक-ठीक न्याय मैं करूंगी। तदनन्तर राजासे कहा कि आज आप रणवासमें रहें, मैं इस बातकी जांच करूंगी। प्रातःकाल होने पर वह चतुरा रानी उठी और एकांतमें जब वह बैठी थी, उसी समय सत्यघोष ब्राह्मण आया। रानीने उसे वहीं

रोककर सन्मानके साथ विठा लिया और उसके साथ जुआ खेलना प्रारंभ कर दिया। इसके बाद हँसते हुए रानीने मंत्रीसे कहा—यदि मैं तुम्हें जीत लूंगी तो बोलो क्या दोगे? उत्तरमें उसने कहा यदि मैं हार गया तो घोड़ा कपड़े गहने आदि बहुतसे पदार्थ आपको दूंगा। यह सुन रानी बोली—वाह! यह तो मेरे ही बहुतसे हैं? इनका मैं क्या करूंगी। हां एक बात है। यदि तुम अपनी नामकी खुदी हुई मुंदरी (मुद्रिका) कटारी और यज्ञोपवीत (जनेऊ) दे दो तो ठीक हो। मंत्री रानीकी चालाकी पहिचान न सका। वह इसी शर्तपर राजी हो गया और अभाग्यवश बेधड़क खेलते-खेलते रानीसे हार खा गया। जीत जानेपर रानीने उस मंत्रीके जनेऊ और मुंदरी दोनों ले लिये इसके बाद प्रसन्न हो एकांतमें जा उसने निपुणमती नामक एक दासीको बुलाई और उसके हाथमें उन दोनों चीजोंको देकर कहा—तू सत्यघोषके घरसे यह निशान दिखलाकर भद्रमित्रके रत्नोंका पिटारा ले आ। दासी सुचतुर थी। उसने रानीकी आज्ञानुसार काम करके ला दिया। रानीने उस पिटारेको राजा सिंहसेनके सुपुर्द किया और वह उसे लेकर सभामें गया। राजाने उन रत्नोंमें कुछ रत्न मिला दिये और उस वैश्यसे कहा कि भाई! तू इनमेंसे अपने रत्न ढूंढ़ ले। भद्रमित्र सच्चा था वह अपने रत्न खूब पहचानता था इसलिए उनमेंसे अपने रत्न चुनकर उठा लिये। यह देख राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ उसने सोचा—यह कोई बड़ा ही सदाचारी सत्यवादी पुरुष है। यह विचारा दुष्टने ठग लिया है। सत्यघोष महापापी, धर्मभ्रष्ट, असत्यवादी निर्दयी दंड देने योग्य महाशठ है। यह सोचकर राजाने नौकर बुलवाये और उन्हें क्रोधसे सत्यघोषको दंडित करनेके लिये तीन आज्ञायें दी। एक तो इसका समस्त धन छीन लो, दूसरे वज्रमुष्टि नामक मल्लसे तीस घूंसे लगवाओ और तीसरे तीन कांसेके बर्तन ताजे गोबरसे भरकर इसे खिलाओ। राजाकी आज्ञा पाकर यमके समान निष्ठुर उन भृत्योंने भी वैसा ही किया। सत्यघोष राजाके इस व्यवहारसे बहुत ही असंतुष्ट हुआ वह राजासे बैर बांधकर आर्तध्यानसे मरा और खजानेमें सांप उत्पन्न हुआ।

इसलिए कहते हैं कि चोरी कभी न करना चाहिए। अन्यायसे दूसरेका धन ले लेना ही चोरी है। इस चोरीसे सुजनता नष्ट हो जाती है। विश्वास चला जाता है, मित्र बंधु बांधवों तक पर विपत्ति आती है, जिसप्रकार दावानलसे लता भस्म हो जाती है उसीप्रकार चोरी करनेसे अनेक गुणोंकी सत्तासे उपार्जित निर्मल कीर्ति बातकी बातमें नष्ट हो जाती है। देखो शास्त्रोंको जानते हुए भी पापी मूर्ख ब्राह्मणने चोरीकी आदत पड़ जानेसे रत्न हरण किए और इसीलिए वह लहमे भरमें मंत्रिपदसे च्युत हो तीव्र दंडसे दंडित हुआ। इतना ही नहीं, उसने भविष्यमें भी पापको पैदा करनेवाली तिर्यंच गति पाई। राजा सिंहसेनने संतुष्ट हो भद्रमित्रको श्रेष्ठी पद दिया सो ठीक ही है, शुभ भाग्यके उदयसे क्या क्या नहीं होता और उस राजाने सत्यघोषको जगह धम्मिलको मंत्री बना लिया।

अथानंतर आसना नामक भयानक जंगलमें कांतार पर्वतपर एक दिन वरधर्म नामक मुनिराज पधारे और उनकी वंदना करनेके लिए सेठ भद्रमित्र भी गया। मुनिराजसे धर्मका उपदेश सुनकर वह निरंतर दान करने लगा। यह देख उसकी माता उसे बार बार रोकने लगी परंतु वह उत्कंठापूर्वक दान देता ही रहा। उसकी इस दानवीरतासे भाट लोग कीर्ति गाने लगे सो ठीक ही है—जो दानी हैं उनके सामने धन क्या चीज है? जो विरक्त चित्त हैं उनके लिए मोह क्या कर सकता है? परंतु उसकी माताको यह बात सह्य न हुई, वह क्रोधसे मरकर उक्त आसना जंगलमें व्याघ्री उत्पन्न हुई सो ठीक ही है---रौद्रध्यानके वशीभूत हो यह जीव व्याघ्र मार्जार (बिल्ली) सर्प आदि योनियोंमें पैदा होता है इसलिए बुद्धिमानोंको रौद्रध्यान सर्वथा छोड़ देना चाहिए।

एक दिन भद्रमित्र उसी वनमें क्रीड़ाके लिए गया था, उसकी माके जीव बाघिनीने उसे खा डाला और वह मरकर स्नेहके वश रामदत्ताके उदरमें सिंहचंद्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके छोटा भाई पूर्णचंद्र हुआ और वे दोनों राजा सिंहसेनके अतिप्रिय थे और इसतरह पुत्र स्त्रीके साथ वह आनंदसे भोग भोगता था। एक

दिन वह सिंहसेन खजाना देखने गया था और रत्नादि देखकर ज्यों ही बाहिर निकलता था कि क्रोधसे लाल आंखेंकर पूर्वजन्मके वैरसे उस सत्यघोषके जीव सांपने काट लिया जिससे तत्काल ही वह राजा पृथ्वीपर गिर पड़ा विष दूर करनेके लिए देश देशांतरोंसे हजारों वैद्य बुलाए गए और जब कोई उस विषको दूर न कर सका तो सांपोंका मर्दन करनेवाला मंत्रवादी बुद्धिमान् गारुड़दंड नामका सपेड़ी बुलाया गया। उसने मंत्रके बलसे दिशा विदिशाओंसे अनेक सर्प बुलाए और अग्निकुंडमें प्रवेश कर शुद्ध होनेकी आज्ञा दी। गारुड़दंडकी आज्ञानुसार समस्त सर्प तो उस अग्निकुंडमें जलके समान तैरकर पार हो गए केवल सत्यघोषका जीव अगंधन ही बच गया। यह देख सपेड़ोने उससे कहा—या तो इस राजाको विषवेदनासे मुक्त करो अथवा इस अग्निकुंडमें प्रवेश कर जाओ। अगंधनको राजासे महा द्वेष था, उसने राजाको छोड़नेकी अपेक्षा अग्निमें भस्म हो जाना ही अच्छा समझा इसलिए अग्निकुंडमें घुसकर उसने अपने प्राण छोड़े और कीलक वनमें चमर मृग उत्पन्न हुआ। सिंहसेन मरकर सल्लकी वनमें मदोन्मत्त अशनिघोष नामका हाथी हुआ। पतिके मर जानेसे रामदत्ताको महा दुःख हुआ। वह मोहकी उत्कटतासे छाती कूट कूटकर विलाप करने लगी। जब रानीका शोक कुछ शांत हो गया तो दांतमती और हिरण्यमती नामकी दो आर्यिकाएं उसके यहां आईं। रामदत्ताको उन्होंने सद्धर्मका उपदेश दिया, द्रव्य क्षेत्र आदिका यथार्थ स्वरूप समझाया जिससे उसने उनहीके समक्ष शुद्ध संयम धारण कर लिया। पिताके मर जानेपर सिंहचंद्र तो राजा हुआ और छोटा भाई पूर्णचंद्र युवराज पदपर अभिषिक्त हुआ।

इसप्रकार वे दोनों सुखसे राज भोग रहे थे कि एक दिन सिंहचंद्रके मनमें सहसा माता पिताके वियोगका दुःख उमड़ आया। इसी समय भाग्यवश पूर्णचंद्र नामक मुनिराजका उसने आगमन सुना। सिंहसेन भक्तिवश उनकी वंदनाके लिये गया और मुनिराजसे धर्मका उपदेश सुन विरक्त हो गया। अपने छोटे भाई पूर्णचंद्रको राज दे उन ही मुनिराजके समीप दीक्षा ले मुनिव्रत धारण कर लिये। सिंहचंद्र मुनि हो उत्साहके साथ

तप तपने लगे और उसके प्रभावसे उनके चारण ऋद्धि उत्पन्न हो गई इसके बाद तपके प्रभावसे उनके मनःपर्यय-ज्ञानका भी उदय हो आया जिससे ढाई द्वीपमें सूक्ष्म स्थूल समस्त पदार्थोंको जानने लगे। एक दिन मनोहर वनमें सिंहचंद्र मुनिराज विराजमान थे, रामदत्ता उनकी वन्दनाके लिये गई और पुत्र स्नेहसे स्तुति करते हुए बोली—हे मुनिराज तुम धन्य हो, तुमने युवावस्थामें राज छोड़ तप धारण किया है। सिंहसेनके कुलरूपी कमलको तुम सूर्य हो, विद्वान्‌रूपी चकोरोंके लिये निर्मल पूर्ण चंद्र हो और स्वयं संसारके पारको पहुंचनेवाले हो। इसके बाद उसने मुनिराजसे पूछा—महाराज! तुम्हारा छोटा भाई पूर्णचंद्र धर्म छोड़कर राज्य भोग रहा है। वह सुखकी आकांक्षासे क्या कभी धर्म ग्रहण भी करेगा? प्रभो! अपने ज्ञानचक्षुसे यथार्थ जानकर कहिये। उत्तरमें मुनिराजने कहा---निश्चयसे धर्म ग्रहणकर आत्मकल्याण करेगा। रामदत्ताने जब उसका कारण पूछा तो मुनिराजने कहा---जिस दिन वह अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तांत सुनेगा, उसी दिन विरक्त हो जायगा और वह वृत्तांत इस प्रकार है---

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कौशल एक देश है उसके वृद्ध ग्राममें मृगायण नामका एक ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम मधुरा था उन दोनोंके बुद्धिमती वारुणी नामकी एक पुत्री थी। काल-क्रमसे उसके पिताकी मृत्यु हो गई और वह मृगायण श्रीऋषभ भगवानकी भक्तिके वश हो देवताओंसे निर्मित बारह योजन विस्तृत अयोध्या नगरीके अधिपति अतिबलके लक्ष्मीके समान सुंदर सुमिता रानीसे हिरण्यवती नामक पुत्री हुई सो ठीक ही है जो अति विषयासक्त होते हैं वे कर्म विपाकसे मरकर स्त्री होते हैं। कालक्रमसे हिरण्यवती युवती हुई और उसके समस्त शरीरमें लावण्य झलक उठा।

अथानंतर स्वर्गतुल्य सुंदर पोदनपुर नामक नगरमें पूर्णचंद्र नामका राजा राज्य करता था वह महा सुंदर समस्त गुणोंकी खानि था। अतिबलने हिरण्यवतीका विवाह उसके साथ कर दिया और वे दोनों दिन रात

अनुपम भोग भोगने लगे। कालक्रमसे उस मधुरा ब्राह्मणीका जीव तो इन दोनोंके रामदत्ता नामक पुत्री हुई। सो देख! पति माता हो जाता है, स्त्री पुत्री हो जाती है, पुत्री पुत्र हो जाता है इसप्रकार संसारकी धिक्कारने योग्य विचित्र गति है। भद्रमित्र नामका वह सेठ मरकर मैं तेरे सिंहचंद्र नामका पुत्र हुआ जो इससमय मुनि अवस्थामें हूं। और पूर्व भवमें तेरी जो वारुणी पुत्री थी, वही मरकर मेरा छोटा भाई तेरे पूर्णचंद्र उत्पन्न हुआ है। तेरे पिता जो पोदनपुरके राजा पूर्णचंद्र थे वह भद्रबाहु मुनिराजके समीप दीक्षित हो मुनि हो गये और सर्वावधि ज्ञानके स्वामी हमारे गुरु हैं। आर्यिका दांतमतीके समीप तेरी माता भी दीक्षित हो गई है। तेरा पति सिंहसेन सर्पके काटनेसे मरकर अशनिघोष नामका हाथी हुआ है। वह मत्त हो घूम रहा था और मुझे मारनेके लिये दौड़ा तो मैंने उसे पूर्व भवका सब संबंध बतला संबोधा जिससे उसे ज्ञानकी प्राप्ति हो गई और उसने मुझसे अणुव्रत धारण कर लिये। अब तो उसकी परिणति बदल गई, वह संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त हो मास पक्ष सप्ताह आदिके उपवास आदि व्रतोंका पालन करने लगा, सूके पत्ते चबाने लगा, और इस-तरह जल रहित तालाबकी तरह वह शक्तिहीन निर्बल होकर गया। अब पूर्व जन्मका बैरी जो सत्यघोषका जीव मरकर सर्प हुआ था फिर मरकर चमर मृग हुआ था वही मरकर इस बनमें कुर्कुट सर्प हुआ। एक दिन यह हाथी एक महीनेका उपवासकर पारणाके दिन सारिणी नदीके तटपर जल पीने घुसा था कि दलदलमें फंस गया। व्रतोंसे इस हाथीका शरीर तो निर्बल था ही, वह निकल न सका, इतनेमें पूर्व जन्मका बैरी वह सर्प क्रोधसे इसके माथेपर चढ़ गया और इसे काट खाया। हाथीने उससमय समाधिमरण किया और उसी विष-वेदनासे मरकर सहस्रार नामक स्वर्गके रविप्रभ विमानमें श्रीधरदेव हुआ, सिंहसेनका मंत्री धम्मिल मरकर उसी जंगलमें हाथीका मित्र बंदर हुआ था सो उसने जब हाथीको सांपसे दंशा हुआ देखा तो उसने उस सांपको भी मार डाला और मरकर वह (सांपका जीव) तीसरे नरकमें पहुंचा। हाथीका जीव ज्यों ही उपपाद शय्यासे

उठा वह स्वर्गसम्पदा देखकर आश्चर्यमें पड़ गया, वह सोचने लगा यह विमानोंकी पंक्ति क्या है? यह स्त्रियां भी कौन हैं? देवको भ्रांत देख कर देवांगनाओंने कहा—नाथ! यह स्वर्ग है, यह आपका वासस्थान है, हम आपकी नियोगिनियां देवियां हैं उनकी यह बात सुन उस देवने अपने अवधिज्ञान नेत्रसे उक्त बातोंकी यथार्थता जानी और साथ ही अपने हाथीके जन्मको भी विचारा। व्रतका फल स्वर्गसंपद् देख उसने मन ही मन व्रताचरणको बहुत ही सराहा और समुद्रमें नौकाके समान संसारसे स्वयं और परको पार उतारने वाले ज्ञानी गुरुओं की बारबार प्रशंसा की। वह देव असंख्य द्वीप समुद्रोंमें मनमानी देवियोंके साथ क्रीड़ा करने लगा। उसका शरीर चार हाथ ऊंचा था, सात धातुओंसे रहित था, उसकी आयु अठारह सागर की थी, अठारह हजार वर्ष बाद वह मानसिक आहार करता था, अठारह पक्ष बाद श्वास लेता था, उसके पद्म लेश्या थी और जिनेंद्र भगवानकी वंदना आदि कर अपना काल आनंदसे बिताता था।

देखो! व्रतकी महिमा अपरंपार है, इससे नाना तरहके इंद्रियसुखोंकी खानि स्वर्गसंपद् तो मिल ही जाती है परंतु अनंत सुखका घर मोक्ष तक प्राप्त हो जाती है इसलिए यथाशक्ति सबको व्रताचरण करना चाहिये।

इस प्रकार भट्टारक श्री रत्नभूषणाम्नायके अलंकार विद्वान लोगोंकी चतुरतारूपी समुद्रको चन्द्रमाके समान उभय भाषाके चक्रवर्ती हर्षदेव पिता और वीरिका माताके पुत्र ब्रह्मचारीश्वर कवि कृष्णदास द्वारा अपने छोटे भाई ब्रह्मचारी मंगलदासकी सहायतासे विरचित संस्कृत विमलपुराणकी देहू (आगरा) निवासी व्याकरण-शास्त्री पं० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिन्दी वचनिकामें सिंहसेनके जीव श्रीधरदेवकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला सातवा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवां सर्ग।

परम ज्योति सर्वज्ञ जिन, आदिनाथ भगवान;
मुनिजन वंदत चरण युग, दीजै मुझ शुभ ज्ञान।

अथानंतर शृंगालवान् नामक व्याधने उस मृत हाथीको देखा तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ, उसने उसके माथेसे मोती निकाले और चमकते हुए विशाल दांत उखाड़ डाले। उन सबको लेकर वह सिंहपुरमें गया वहां धन-मित्र शेठके हाथ बेच दिए। उस सेठने वे दांत और मोती पूर्णचंद्र राजाकी भेंट किए। पूर्णचंद्रने दांतोंसे तो अपनी खाटके चार पाए बनवाए और गजमुक्ताओंका हार बनाकर पहिन लिया। देखो! संसारकी ऐसी ही विचित्र गति है। इसलिए हे माता! इस संसारकी दशामें किसे तो संतोष हो सक्ता है और सुत स्त्री धन धान्य आदि किसके हुए हैं? इस संसारमें कोई किसीका प्यारा नहीं है एक अपना मतलब ही प्यारा है। इस संसारमें जन्म मरण आदिके अनंत दुःख हैं और यह बिल्कुल साररहित है।

मुनिराज इस प्रकार संसारका स्वरूप कहकर चुप हो गए तो रामदत्ता संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त हो अपने छोटे पुत्रको संबोधनेके लिए चल दी और वहां जाकर पुत्रको यथार्थ बोध करानेके लिए उपदेश देने लगी। जब उसे बहुत देर तक भी वैराग्य न आया तो मुनिराजने जो पूर्व भव कहे थे, वे सब कह सुनाए। अब तो पूर्णचंद्रकी आंखें खुल गईं। वह संसारी अनित्यता समझ सम्यग्दृष्टि हो राज्य पालन करता हुआ रहने लगा। रामदत्ताने मरते समय निदान किया कि मेरा और इन लोगोंका पुनः संयोग हो। वह मरकर महाशुक्र स्वर्गके भास्कर विमानमें भास्कर नामका सोलह सागरकी आयुका धारक पद्मलेश्या वाला देव हुआ। वह सोलह हजार वर्ष बाद एक बार मानसिक आहार करता था, सोलह पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास लेता था, चार हाथ ऊंचा था, उसकी प्रभा अरुण थी और देवांगनाओंके साथ असंख्य द्वीप समुद्रोंमें क्रीड़ा करता फिरता

सिंहचंद्र मुनि भी अति दुर्धर तप
था। पूर्णचंद्र भी धर्मके प्रभावसे वैडूर्य विमानमें वैडूर्य नामका देव हुआ।
तपकर ऊर्ध्व ग्रैवेयकके ऊर्ध्व प्रीतिंकर विमानमें अहमिंद्र हुये। उनकी इकतीस सागरकी आयु थी, छठे नरक तक
अवधिज्ञान था, शुक्ल लेश्या थी, डेढ़ हाथ ऊंचा शरीर था और सदा जिनेंद्र भगवानके गुणोंका ध्यान किया करते थे।

इसी पृथ्वीपर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें धरणी (पृथ्वी) के तिलकके समान धरणीतिलक नामक
एक नगर है उसका स्वामी आदित्यवेग विद्याधर था, उसकी स्त्री सुलक्षणाके गर्भसे महाशुक्र विमानसे चयकर
रामदत्ताका जीव भास्कर नामका देव पुत्री हुआ और उसका नाम श्रीधरा रक्खा गया। उसी पर्वतपर अलका
नामकी एक और दूसरी नगरी है उसका राजा कामदेवके समान दर्शक नामका था। उस दर्शकके साथ पिताने
उस श्रीधराका विवाह कर दिया। नाना इंद्रियभोग भोगते हुए उन दोनोंके वैडूर्य विमानका अधिपति देव
पूर्णचंद्रका जीव चयकर पुत्री हुआ और उसका नाम यशोधरा रक्खा गया और वह भास्करपुरके अधिपति
सूर्यावर्त राजाको विवाही गई। परस्पर यथेष्ट भोग भोगते हुए उन दोनोंके सिंहसेनका जीव श्रीधरदेव चयकर
पुत्र हुआ और उसका नाम रश्मिवेग रक्खा गया।

किसी समय राजा सूर्यावर्त मुनिसे यतिधर्मका व्याख्यान सुन विरक्त हो गया और दीक्षित हो मुनि हो
गया। पतिके वियोगसे दुःखित हो यशोधरा भी विरक्त हो गई और वह भी आर्यिकाके व्रत पालने लगी।
अपने जामाता और पुत्री दोनोंको दीक्षित सुन श्रीधरा भी विरक्त हो गई और वह भी गुणवती आर्यिकाके
समीप व्रत ग्रहण कर आर्यिका हो गई। राजसिंहासन पाकर रश्मिवेग अत्यन्त सुशोभित होने लगा, वह
अपने पूर्वकृत पुण्यका प्रसन्न चित्त हो फल भोगने लगा। एक दिन वह रश्मिवेग सिद्धकूट जिनालयकी वंदनाके
लिए गया था, वहां उसे हरिश्चंद्र नामक चारणऋद्धिके धारक मुनिराजके दर्शन हो गए। वह भक्तिभावसे हाथ
जोड़कर उनके सामने बैठ गया और वे मुनिराज भी हितकर धर्मका उपदेश देने लगे। वे कहने लगे—

जिस प्रकार कूएमें रस्सी द्वारा जल निकालते हैं उसी प्रकार नरक तिर्यंच गतियोंमेंसे जो प्राणियोंका उद्धार करता है वह वास्तवमें धर्म है और वह सिवा जिनधर्मके दूसरा कोई नहीं है। इस संसारमें कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है जिसे प्रातःकाल देखते हैं वही सामको नहीं दीख पडता—नष्ट हो जाता है। जिसप्रकार घोडेके सींग नहीं होते उसी प्रकार संसारमें इष्टवियोग और अनिष्टसंयोगजन्य दुःखसे लोग दुःखी हो शोक तो करते हैं परन्तु उस शोकसे उस पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती किन्तु दुष्कर्मोंका बंध होता है जिसके कारण नरकगति की प्राप्ति होती है और फिर संसारमें घूमना पडता है। इस संसारमें स्त्री पुत्र धन धान्य आदि किसीके भी नहीं हैं, मरनेपर ये सब यहीं रह जाते हैं, साथ कोई नहीं जाता। वे लोग ही धीर हैं, वे ही सुखी हैं, वे ही पंडित हैं और वे ही सुंदर हैं जो दश प्रकारके भोग भोगकर भी मोक्षकी इच्छासे तप तपते हैं। जो लोग सदा स्त्री सुखमें आसक्त हैं, लोभी मानी हैं वे अपवित्र कीचडसे व्याप्त गडहेमें पडे हुए शूकरके समान निंदनीय और असत्य पदार्थमें प्रेम करनेवाले हैं। जो लोग असत् सुखको छोडकर परम ज्योति परमात्माका ध्यान करते हैं वे अंतर्मुहूर्तमें कर्मोंको नष्ट कर मोक्षसुख पा लेते हैं।

इस प्रकार मुनिराजके उपदेशको सुन कर उस रश्मिवेगने मनमें राज्यकी अनित्यता और अपना सच्चा हित समझ कर सम्यग्दर्शनके साथ साथ मुनिव्रत धारण कर लिए। पापोंके निरोध करनेवाले तपको तपते हुए उन्हें बहुत शीघ्र चारण ऋद्धिकी प्राप्ति हो गई। वे मुनिराज विहार करते हुए एक दिन कांचन नामक गुहामें ध्यानका उपयुक्त स्थान देख विराज गए और पर्यंकासन माड कर स्थिर चित्त हो सकल मलरहित परमात्माका ध्यान करने लगे उन्हें उस अवस्थामें देख कर दो आर्यिकायें वंदनाके लिए आईं और वे श्रीधरा तथा यशोधरा थीं। सत्यघोषका जीव पापी मर कर जो नरकमें गया था वह वहांसे निकला और इसी वनमें नाना योनियोंमें भ्रमण कर विशाल कायका धारक अजगर हुआ। पूर्व जन्मके वैरसे उस पापीने उन मुनिराज और दोनों

आर्यिकाओंको निगल डाला जिससे आराधनाओंका ध्यान करते हुए मुनिराज मर कर तो कापिष्ठ स्वर्गके अर्कप्रभ विमानमें अर्कप्रभ नामके देव हुए और वे दोनों आर्यिकायें रुचक विमानमें अणिमादि विभूतिसे भूषित देव हुईं। उन तीनोंकी चौदह सागर प्रमाण आयु थी, पांच हाथ (अरत्नि) ऊंचा शरीर था और सौंदर्य तथा भोगोंके निधि थे। वह पापी अजगर भी आयुके अंतमें मरा और पापसे पंकप्रभामें नारकी उत्पन्न हुआ जिससे असंख्य असह्य दुःखोंको भोगने लगा।

इसी जंबूद्वीपके प्रसिद्ध भरतक्षेत्रमें एक मनोहर चक्रपुरी नामकी नगरी है। उसका राजा अपराजित था, उसके सुंदरी नामकी रानी थी उसके गर्भमें वह सिंहचंद्रका जीव ऊर्ध्वग्रैवेयकमे चयकर आया और चक्रायुध नामका पुत्र हुआ। उसके साथ पांच हजार राजकन्यायें विवाही गईं। कापिष्ठ स्वर्गसे चय कर अर्कप्रभ देव उसके चित्रमाला रानीसे वज्रायुध नामक बुद्धिमान् पुत्र हुआ। पृथिवी तिलक नगरके अधिपति अतिवेग विद्याधरके प्रियकारुणिका रानीके गर्भमें श्रीधराका जीव कापिष्ठ स्वर्गसे चय कर पुत्री उत्पन्न हुआ और उसका नाम रत्नमाला पडा। एक दिन पिताने उसे विवाहके योग्य समझ कर वज्रायुध कुमारके साथ विवाह दिया और वे परस्पर इंद्रियभोग भोगने लगे। यशोधराका जीव कापिष्ठ स्वर्गसे चया और वह इनके रत्नायुध नामका गुणी पुत्र पैदा हुआ इसप्रकार सब शुभ इष्ट संयोग पाकर मनमाने सुख भोगने लगे। सो ठीक ही है—जब शुभकर्मका उदय होता है तब सब संपत्ति मिल ही जाती हैं।

एक दिन राजा अपराजितने पिहितास्रव मुनिराजसे धर्मका उपदेश सुना और वह चक्रायुधको राज्य दे दीक्षित हो मुनि हो गया। राज्य पाकर चक्रायुध प्रजाकी सब तरह रक्षा करने लगा। एक दिन वह सिंहासन पर बैठा था और दर्पणमें मुंह देख रहा था कि इतनेमें उसे शिरपर सफेद बाल दिखलाई पडा। उस देखकर चक्रायुधने सोचा—अहा! यह मुझे बुलानेके लिए यमदूत आ गया है; हा! मेरी सारी आयु व्यर्थ ही चली गई,

मैंने स्वर्गमोक्ष देनेवाले धर्मका कुछ भी आराधना नहीं किया। बस! इसप्रकार संसार शरीर भोगोंसे विरक्त हो उस चक्रायुधने वज्रायुध पुत्रको तो राज्य दिया और स्वयं पिताके पास जाकर दीक्षित हो गया। मुनि हो वह कभी तो नदीके तटपर तप तपने लगा, कभी भयंकर वनमें ध्यान करने लगा और कभी पहाडकी चोटी पर खडे हो घोर परिषह सहने लगा। वज्रायुध भी एक दिन विरक्त हो गया और वह भी रत्नायुध पुत्रको राज्य दे पितासे दीक्षित हो मुनि हो गया। मुनि चक्रायुध अपनी शुद्ध आत्माका ध्यान करते करते सर्वथा शुद्ध हो गये मुनि वज्रायुध गरमियोंमें पहाडपर, हेमन्तमें नदीके तटपर, वर्षामें वृक्षोंके नीचे तप तपते आत्मध्यान करने लगे।

अथानंतर रत्नायुध राज्य पाकर विषय भोगोंमें अनुरक्त हो गया। एक दिन उसका पट्टहस्ती मनोहर वनमें गया था, वहां वज्रदन्त नामक मुनि आए थे और उन्होंने लोकानुयोग धर्मका उपदेश दिया था। उसे सुन कर हाथीको पूर्वजन्मकी याद आ गई जिससे वह अपनी बार बार निन्दा करने लगा। उसने सोचा—हा! मैंने पूर्वजन्ममें असंख्य पाप किए थे उन्हींके उदय आनेसे मैंने यह तिर्यंचगति पाई है। इसके सिवा उसने उसी चिंतामें खाना पीना भी छोड दिया। सो ठीक ही है—सत्संगतिसे भव्योंको सुफल फलता है। देखो! वसंत ऋतुकी संगतिसे काली भी कोकिल कैसा मीठा शब्द करने लगती है। हाथीकी वैसी दशा देख राजाको बडी ही व्याकुलता हुई। वह उसका कारण मंत्री और वैद्योंसे पूछने लगा। उन लोगोंने भी जैसी बात सुनी थी उसी तरह कहा कि—राजन्! इस हाथीको शरीरकी तो कोई व्याधि है नहीं। इसे किसी मुनिराजसे धर्म उपदेश सुन कर जातिस्मरण हो आया है, इसलिए यह शुद्ध ही घृतादिसे युक्त भोजन करेगा, अन्य फलादिक नहीं। वैद्योंकी यह बात सुन शुद्ध आहार बना कर जब हाथीके सामने रक्खा गया तो उसने वह खा लिया। यह देख रत्नायुधको बडा भारी आश्चर्य हुआ। वह उसी समय मनोहर वनमें गया और वंदना कर अवधिज्ञानी उन

मुनिराजसे हाथीका समस्त वृत्तांत और भोजन न करनेका असली कारण पूछने लगा। उत्तरमें मुनिराजने कहा-राजन्! सावधान हो सुनो।

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें धनधान्यसे पूर्ण छत्रपुर नामका नगर है। उसका राजा शत्रुओंसे अजेय प्रीतिभद्र था, उसके सुंदरी नामकी सुंदरी स्त्री थी। उसके प्रीतिंकर नामक गुणोंकी खानि एक पुत्र था। उसके मंत्री चित्रमतिके कमला स्त्रीसे उत्पन्न विचित्रमति नामका पुत्र था। एक दिन वे दोनों पुत्र क्रीडा करनेके लिए वनमें गए थे। वहां उन्होंने धर्मरुचि नामक मुनिराजको देखा और वे वंदना कर मुनिराजके सामने बैठ गए। उनमें से प्रीतिंकरने गृहस्थधर्मका स्वरूप और कर्त्तव्य पूछा। उत्तरमें मुनिराजने कहा-धर्मके जानकारोंको पांचों तिथियोंमें प्रोषध करना चाहिए और ब्रह्मचर्य धारण करना उचित है। देवपूजन, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये छह कार्य भी गृहस्थोंको करणीय हैं। यदि इनके करनेकी शक्ति न हो तो फिर मौन धारण करना चाहिए और वह मौन सात प्रकारका है अर्थात् वमन, मैथुन, स्नान, भोजन, मलमोचन, सामायिक और जिनपूजन इन सात स्थानोंमें मौन धारण करना उचित है। यह मौन नित्य है, इसको धारण करनेसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका उदय नहीं होता है। एक नैमित्तिक मौन भी होता है और उसे विधिपूर्वक धारण करना चाहिए इसके बाद कुमारने फिर पूछा कि—स्वामिन्! इस व्रतका पहिले किसने आचरण किया है और उससे उसे क्या फल मिला है? मुनिराजने उत्तर दिया—

इस जंबूद्वीपस्थ भरतक्षेत्रके कोशल देशमें कौशांबी नगरी है उसका राजा हरिवाहन था, शशिप्रभा रानी थी और उनके सुकोशल पुत्र था। वह बडा ही बुद्धिमान था, पूर्वपुण्यके प्रभावसे उसने अल्प समयमें ही समस्त जैन आगमका अध्ययन कर लिया था। युवावस्था आनेपर यद्यपि राजकन्याओंके साथ विवाह कर दिया गया था तो भी वह उनका संग न करता था यह देख माता पिताके चित्तमें बडी भारी चिंता हुई और भविष्यमें वंश-

उत्पन्न होनेके कारण पूछे साथ ही साथ यश रूप आदि किस कारणसे प्राप्त होते हैं यह भी पूछा। उत्तरमें मुनिराजने कहा--मद्य मांस आदिके छोडनेसे और ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेसे उच्च कुल और उच्च गोत्रमें जन्म होता है तथा कीर्ति और रूपकी प्राप्ति होती है। इसप्रकार उस गणिकाको उपदेश देकर मुनि प्रीतिंकर वनको चले गये। उनको देरीसे आया देख साथी विचित्रमतिने पूछा कि--भाई! इतनी देर तक तुम कहां रहे? मोक्षकी इच्छा करनेवाले तपस्वियोंको तो सदा वनमें ही रहना उचित है। विचित्रमतिकी इस बातके उत्तरमे प्रीतिंकरने उस बुद्धिषेणाका कुल वृत्तांत कह डाला जिसे सुनकर उन्हें सन्तोष हो गया। दूसरे दिन जब विचित्रमति आहारके लिए गये तो वे भी उसी बुद्धिषेणाके घरमें घुस गये। जब गणिकाने मुनिको देखा तो पहिले दिनके समान उनको भी नमस्कारकर यथार्थ बात कह सुनायी परन्तु वह मूर्ख विचित्रमति उसके साथ कामकथा करने लगा। वह बोला—हे सुन्दरी! हे मृगलोचने! हे गौरांगि! हे प्रगल्भे! तू धर्म पूछकर क्या करेगी? यह यौवन गुजर जायगा, नियमसे बुढापा आवेगा इसलिए इस समय बिना काम सेवन किए तेरा यह शरीर किस काम आवेगा? मुनिकी ऐसी अयुक्त बात सुन वेश्या मुस्कराकर बोली—मुने! काचकेलिए उत्तम मणि और गदहेके लिए हाथी छोडना कौन पसंद करेगा? वेश्याके यह वचन सुन मुनि कामातुर हो बोले—हे रंभोरु! मेरे लिए तो तुम ही उत्तम मणि और गजेश्वर हो। इसके बाद बुद्धिषेणाने जब यह कहा कि--थोडी देरके सुखके लिए समीप आये हुए नित्यसुखको क्यों छोडते हो? तो मुनि कहने लगे--मुझे तो तेरे संगमसे जायमान सुख अच्छा लगता है। इसके सिवा यह भी बात है कि नित्य सुख इंद्रियोंके अगोचर है वह है या नहीं, इसका क्या ठिकाना है। मुनिकी ऐसी विपरीत बात सुन बुद्धिषेणाने उन्हें भ्रष्ट समझा और अति अपमानके साथ घरसे बाहर निकाल दिया। वेश्यासे अपमानित हो विचित्रमति वनमें लौट आए और तप तपने लगे। वे कभी तो एक महीने बाद पारणा करते और कभी दो मास बाद आहार लेते। इस प्रकार-

प्राय प्रगट करना और दिन या रातको सोना ये काम न करने चाहिए। सोलहो पहर जिनालयमें रहना चाहिए। पुत्री ! यह व्रत आचरण कर, इससे तेरे दुष्कर्मोंका नाश होगा। मुनिराजकी आज्ञा सुन उस तुंगभद्रा-ने मौनव्रत ले लिया और वह अपने घर चली आई। विधिपूर्वक उसने उस व्रतको पाला। मरते समय पंचनम-स्कारमंत्रका जाप करते प्राण छोडे। वही यह तेरे पुत्र सुकोशल हुआ है। राजन्! यह इसी भवमें तप तपकर मोक्ष जायगा। अपने पुत्रके विषयमें उक्त बात सुन राजा हरिवाहनको भी वैराग्य हो गया वह अपने पुत्रको राज्य दे उन पिहितास्रवके समीप ही दीक्षित हो दिगंबर हो गया। हरिवाहनकी इस वीरताको देखकर सौ राजा भी विरक्त हो गए सो ठीक ही है—शत्रुओंके जीतनेवाले धीरवीरोंके ऐसे ही प्रशंसनीय कार्य होते हैं। राजा हो सुकोशल मंत्रियोंकी प्रेरणासे राज्य तो करने लगे परंतु शास्त्रके अभ्यासको छोड कर स्त्रियोंसे बात भी न करते थे। एक दिन मंत्रीने अपना श्रुतसागर नामका पुत्र बुलाया और एकांतमें उससे कहा—यह सुको-शल मूर्ख राजनीतिमे अनभिज्ञ है इसलिए किसी उपायसे उसे शीघ्र ही मार डाल। तू प्रौढ है इसलिए मैं तुझे तो राजा बना दूंगा और मैं तेरा मंत्री बनकर रहूंगा इस तरह यह राज्य अपना ही हो जायगा। अपने पिता-की स्वामीसे द्रोह करनेवाली बात सुनकर श्रुतसारने अपना माथा ठोंका और राजाके समीप जा कर एकांतमें अपने पिताकी कुल बात ज्योंकी त्यों कह दी। मंत्रिपुत्रकी बातोंसे सावधान हो सुकोशलने मंत्रीको अपने नगर और देशसे बाहर निकाल दिया। एक दिन बिजली पडनेसे मरे हुए दो हंस उस राजाने देखे और इससे उसे वैराग्य हो गया। श्रुतसागर मंत्रिपुत्रको उसने राज्य दिया और अपने पितासे दीक्षा ले मुनि हो गया। मति-सागर मंत्री जो देशसे निकाल दिया था उसने अपनी शठताके वश निदान किया कि—सुकोशलने मुझे अपने राज्यसे निकालकर मेरा अहित किया है इसलिए मैं इसे जानसे मार डालूंगा। आयुके अंतमें मरकर वह मौद्गल पर्वतपर सिंह हुआ। एक दिन वे दोनों मुनि उसी पर्वतपर आकर पहुंचे और योग धारणकर विराज

गये। इतनेमें वह सिंह आया और पूर्व जन्मके वैरसे क्रुद्ध हो उन दोनों मुनियोंको नख दांतोंसे विदारकर खाने लगा। उन मुनिराजोंका ध्यान उस समय शुद्ध था, वे क्षपकश्रेणीका आरोहण केवलज्ञानी हो गये और अंतर्मुहूर्तमें ही मुक्त हो शुद्ध हो गए।

इसलिए कहता हूं कि--हे वत्स ! नित्य और नमित्तिके दोनों प्रकारका मौन धारण करना मुक्तिका प्रदान करनेवाला है। यह व्रत बहुत ही सरल है तो भी विशाल फलका देनेवाला है। मुनिराजका उक्त उपदेश सुन उन प्रीतिंकर और विचित्रमति दोनोंने मौनव्रत धारण करनेका नियम लिया और नगरको लौटना चाहते ही थे कि हरिणीके साथ मैथुन करते हुए हरिणको सिंहसे झपटा हुआ देखा। बस ! अब क्या था ? उन दोनोंको उसी समय वैराग्य हो गया। वे सोचने लगे--जिसप्रकार हरिणीके साथ भोग करते हरिणको इस सिंहने झपट-कर अपने मुंहका ग्रास बनाया है उसीप्रकार स्त्रियोंके साथ इन्द्रियसुख भोगते हुए हम लोगोंको यमराज क्या अपने मुंहका कौर न बनावेगा ? इसके बाद उन धर्मरुचि मुनिराजके पास ही वे अन्तरंग वहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्यागकर मुनि हो गये। उनमेंसे मुनिराज प्रीतिंकरको तपके प्रभावसे क्षीरस्राव ऋद्धि उत्पन्न हो गई। एक दिन वे दोनों विहार करते करते अयोध्या नगरीके वनमें आये। उनमेंसे मन्त्रिपुत्र विचित्रमति तो उपवास धारण कर वनमें ही रह गये और राजपुत्र प्रीतिंकर नगरमें आहारके लिए गये।

अपने घर चर्याके लिये आये हुए मुनि प्रीतिंकरको देखकर बुद्धिषेणा गणिका हाथ जोड नमस्कारकर विनयसे बोली--मुनिराज ! मैं निन्दनीय कुत्सित हूं, मेरा कुल दान देनेके अयोग्य है। इसलिए आप सरीखे तपस्वीके योग्य यहां आहारविधि नहीं बन सकता जिस कुलमें शराब मांस अनाचारसेवन स्वप्नमें भी नहीं देखे जाते उसी जगह आपकी आहारविधि बन सकती है क्योंकि जो मुनि मांसभक्षी हैं वे दोनों आश्रमोंसे भ्रष्ट होनेके कारण अनाचारी व्याधके समान केवल जंगली समझे जाते हैं। इसके बाद उस वेश्याने नीच गोत्र और कुलादिकमें

उत्पन्न होनेके कारण पूछे साथ ही साथ यश रूप आदि किस कारणसे प्राप्त होते हैं यह भी पूछा। उत्तरमें मुनिराजने कहा--मद्य मांस आदिके छोडनेसे और ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेसे उच्च कुल और उच्च गोत्रमें जन्म होता है तथा कीर्ति और रूपकी प्राप्ति होती है। इसप्रकार उस गणिकाको उपदेश देकर मुनि प्रीतिंकर वनको चले गये। उनको देरीसे आया देख साथी विचित्रमतिने पूछा कि-भाई! इतनी देर तक तुम कहां रहे? मोक्षकी इच्छा करनेवाले तपस्वियोंको तो सदा वनमें ही रहना उचित है। विचित्रमतिकी इस वातके उत्तरमे प्रीतिंकरने उस बुद्धिषेणाका कुल वृत्तांत कह डाला जिसे सुनकर उन्हें सन्तोष हो गया। दूसरे दिन जब विचित्रमति आहारके लिए गये तो वे भी उसी बुद्धिषेणाके घरमें घुस गये। जब गणिकाने मुनिको देखा तो पहिले दिनके समान उनको भी नमस्कारकर यथार्थ वात कह सुनायी परन्तु वह मूर्ख विचित्रमति उसके साथ कामकथा करने लगा। वह वोला—हे सुन्दरी! हे मृगलोचने! हे गौरांगि! हे प्रगल्भे! तू धर्म पूछकर क्या करेगी? यह यौवन गुजर जायगा, नियमसे बुढापा आवेगा इसलिए इस समय बिना काम सेवन किए तेरा यह शरीर किस काम आवेगा? मुनिकी ऐसी अयुक्त वात सुन वेश्या मुस्कराकर वोली—मुने! काचकेलिए उत्तम मणि और गदहेके लिए हाथी छोडना कौन पसंद करेगा? वेश्याके यह वचन सुन मुनि कामातुर हो बोले—हे रंभोरु! मेरे लिए तो तुम ही उत्तम मणि और गजेश्वर हो। इसके बाद बुद्धिषेणाने जब यह कहा कि--थोडी देरके सुखके लिए समीप आये हुए नित्यसुखको क्यों छोडते हो? तो मुनि कहने लगे--मुझे तो तेरे संगमसे जायमान सुख अच्छा लगता है। इसके सिवा यह भी बात है कि नित्य सुख इंद्रियोंके अगोचर है वह है या नहीं, इसका क्या ठिकाना है। मुनिकी ऐसी विपरीत वात सुन बुद्धिषेणाने उन्हें भ्रष्ट समझा और अति अपमानके साथ घरसे वाहर निकाल दिया। वेश्यासे अपमानित हो विचित्रमति वनमें लौट आए और तप तपने लगे। वे कभी तो एक महीने बाद पारणा करते और कभी दो मास बाद आहार लेते। इस प्रकार-

के दुष्कर तपकी प्रशंसा जब राजाने सुनी तो वह उनके वश हो गया। बुद्धिषेणाने जब राजाको उसके अधीन होते देखा तो मनमें सोचा कि—अवश्य ही कोई यह महापुरुष है और फिर इसकी अनुचरी वह भी हो गई। वेश्याका संग पाकर विचित्रमति मोहांध हो तपसे भ्रष्ट हो गया सो ठीक ही है पूर्वजन्मके स्नेहसे स्नेह और वैरसे वैर होता है। आयुके अंतमें मरकर वही मुनि यह तेरा हाथी उत्पन्न हुआ है और त्रलोक्यप्रज्ञप्तिके श्रवण करनेसे इसे जातिस्मरण हो गय है इसीलिए शोकाकुल हो इसने खाना नहीं खाया।

राजाने अपने हाथीका कुल वृत्तांत सुनकर सोचा, हा! इस धन, राज्य, स्त्री, पुत्र आदि सबको धिकार है इसलिए वह रत्नायुध पुत्रको राज्य दे अपनी माता रत्नमालाके साथ संयमी हो गया। मुनि हो रत्नायुधने घोर तप तपा और समाधिपूर्वक प्राण छोडनेसे अच्युतस्वर्गमें देव हुआ। तपके प्रभावसे रत्नमाला भी स्त्रीलिंग छेदकर अच्युतस्वर्गमें अच्युत नामक देव हुई। वहां उन दोनोंकी वाइस सागरकी आयु थी, बाईस हजार वर्ष बाद एक बार मानसिक आहार करते थे और बाईस पक्ष बाद एक बार उच्छ्वास लेते थे। उनके शुक्ल लेश्या थी, पद्मराग मणिके समान तीन हाथ ऊंचा शरीर था।

अथांतर मंत्री सत्यघोषका जीव पंकप्रभा नरकमें गया था वह वहांसे निकला और नाना योनियोंमें दुःख भोगने लगा। छत्रपुर नगरमें काजलके समान काला दारुण नामका व्याध था वह महा पापका पुंज सरीखा भयावह था। उसकी स्त्री मंगिका नामकी थी और ब्रह्माने जंगम अंधकारकी माला ही रच दी है ऐसी मालूम-पडती थी। वह सत्यघोषका जीव उन दोनोंके आकर अतिदारुण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन उसी प्रियंगुखंड वनमें विहार करते वज्रायुध मुनि पधारे। वहां वे नाना हिंस्र पशुओंसे व्याप्त वनको देख कर परमात्मा का ध्यान लगाते हुए कायोत्सर्ग मांडकर विराज गए। उस समय वहां वह अतिदारुण व्याध आया और तपसे कृश, अधजले मुर्देके समान विवर्ण शरीरवाले मुनिको देख कर गाली देता हुआ बोला—अरे तू कौन है?

और इस जनशून्य मेरे वनमें कहांसे आया है ? तेरा क्या नाम है, किसका लडका है ? शीघ्र ही बता। नहीं तो मुक्के, पत्थर और बाणोंसे तुझे शीघ्र ही यमके घर पहुंचा दूंगा। जब मुनिराजने उसकी बातका कोई उत्तर न दिया और न, मेरुके समान निश्चल, सिंहके समान वीर, समुद्रके समान गंभीर वे अपने ध्यानसे विचलित हुए तो उस दुष्टने उन्हें पूर्व वैरके वशवर्ती हो पत्थरोंसे मारा। कंठपर्यंत पत्थरोंसे मारनेपर भी जब मुनि ध्यान-के अवलंबनसे न गिर पाये तो उनके गलेमें धनुष डाल कर वह खींचने लगा, जब उससे भी उनकी शांति भंग न हुई तो उसने मुनिके मस्तकपर धनुष मारना शुरू किया परंतु मुनिराज तत्वज्ञानी थे वे बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करने लगे। सो ठीक ही है-वास्तवमें तप वही है जो विघ्न आनेपर भी अपनी सामर्थ्य बनाए रक्खे। मुनिराजने सोचा-इस संसारमें धनधान्यादि जो कुछ भी शरीरको हितकर दीख पडता है वह सब अनित्य है, पिता माता स्त्री पुत्र कुटुंबादि भी क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाले हैं। छह खंड पृथ्वीके मालिक चक्रवर्ती आदि महान् विभूतिके धारक भी कालरूपी सर्पके ग्रास बन जाते हैं। देव, आर्यखंडकी पृथ्वी, राजा, धरणेंद्र, पर्वत, वृक्ष, तारा, ग्रह, दैत्य, देवेंद्र, इष्ट, अनिष्ट पदार्थ पापदायक पुद्गल सब काल आनेपर नष्ट हो जाते हैं। कालका कुछ भी प्रतीकार नहीं है। इस संसाररूप जंगलमें जीवरूपी हरिणको कालरूपी सिंह निश्चयसे खा डालता है उस समय इसकी किसीप्रकार भी रक्षा नहीं हो सक्ती। हे मन ! जिस समय काल आ कर घेर लेता है उस समय पिता माता तो पुत्रको और पुत्र माता पिताको कोई भी किसीको नहीं बचा सकता। साररहित इस संसार में कोई भी किसीका नहीं है, सब स्वार्थसे प्रेम करते हैं यह निश्चित बात है। यह जीव ही सिद्ध बुद्ध निरंजन और नित्य है। यह किसीके द्वारा छेदा भेदा नहीं जा सकता। यह अनादिकालीन चेतन है इसको निर्द्वंद्व हो ध्यान करना चाहिए। यह पुद्गल जीवसे सर्वथा भिन्न है कर्मसे जायमान है इसलिए इस विनश्वरसे मित्रता करना अनुचित है। यह शरीर शुक्र मज्जा आदि अपवित्र सात धातुओंसे बना है, हड्डियोंसे गुथा हुआ है,

रोगरूपी सर्पोंका घर है, चामसे मढा हुआ है, और अपवित्र असह्य दुर्गन्धोंसे पूर्ण है, कर्मोंका कारण है ऐसे देह-
को ध्यान छोड कर कौन पोषेगा अर्थात् देहकी रक्षाके लिए ध्यानका छोडना अनुचित है। मिथ्यात्व अविरति
प्रमाद कषाय आदिसे कर्मोंका आस्रव होता है और उससे यह जीव नरकमें जाता है। द्रव्य और भाव दोनों
प्रकारके आस्रवोंका रुकना संवर है और वह व्रत धर्म आदिके पालनेसे होता है जिसके कारण यह जीव शिव-
पदको पा लेता है। निर्जरा दो तरहकी होती है–सविपाक और अविपाक। जिसमें सविपाक निर्जरा तो समस्त
संसारी जीवोंके होती है और अविपाक मुनियोंके ही होती है। यह लोक अनादिनिधन है, छह द्रव्योंसे व्याप्त
है, और पैर पसार कर खडे पुरुषके आकार है। योगी लोग ध्यानकी सिद्धिके लिए लोकरचनाका विचार
करते हैं जिससे परमपदमें मन स्थिर हो जाता है। वस्तुओंके यथार्थ ज्ञान करानेमें दीपकके समान कारण
सम्यग्ज्ञान संसारमें दुर्लभ है इसके प्राप्त हो जानेपर प्राणियोंको आत्मज्योतिका स्पष्ट भास होने लगता है। यह
सम्यग्ज्ञान कर्मरूपी वृक्षको विदीर्ण करनेके लिए तो फरसा है, कामरूपी पर्वतको भेदनेके लिए वज्र है, अज्ञानां-
धकारके लिए उत्कट सूर्य है इसलिए ज्ञानका सदा ध्यान करना चाहिए। जिनेंद्रभगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म इस
संसारमें बहुत ही कठिनतासे प्राप्त होता है, इसलिए इसकी प्रयत्नसे रक्षा करनी चाहिए।

इस प्रकार बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करते हुए उन मुनिराजने उपसर्गको शांतिपूर्वक सह कर
अपने प्राण छोडे और धर्मध्यानके प्रभावसे वे सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिंद्रके सुख भोगने लगे। वहां उनके
शुक्ल लेश्या थी, एक अरत्नि (हाथ) प्रमाण शुक्ल शरीर था, तैंतीस सागरकी आयु थी और अन्यत्र गमना-
दिसे रहित थे। उनमें लोकाकाशतकको उलट देनेकी सामर्थ्य थी।

वह व्याध आयुके अंतमें मरा और पापके उदयसे सातवें नरक पहुंचा, जहांके दुःख वर्णन करनेमें सिवा
केवली भगवान्के कोई भी समर्थ नहीं है।

धर्मध्यानके बलसे मुनि वज्रायुधमें संसारके समस्त सुखोंकी जननी, कठिनतासे प्राप्त होनेवाली सर्वार्थसिद्धि जब लीन (आसक्त) हो गई तब संसारकी और लक्ष्मीकी तो बात ही क्या है ? सो ठीक ही है—धर्मध्यानके बलसे जब मोक्ष सुखतक मिल जाता है तब इतना हो जाना मुनियोंके लिए कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जिन्होंने इंद्रियोंको वश कर लिया है उनके वास्ते न तो स्वर्ग दुर्लभ है, न राजाओंके सुख ही दुर्लभ हैं और न मोक्षसुख ही कठिन है और जिनको इंद्रियोंने जीत लिया है उनके लिए क्या मोक्ष, क्या स्वर्गसुख और क्या राजसुख सब दुर्लभ ही नहीं असंभव हैं।

इसप्रकार भट्टारक श्रीरत्नभूषणाम्नायके अलंकार विद्वान् लोगोंको चतुरन रूपी समुद्रको चंद्रमाके समान उभयभाषाके चक्रवर्ती हर्षदेव पिता और वीरिका माताके पुत्र ब्रह्मचारीश्वर कवि कृष्णजिष्णु द्वारा अपने छोटे भाई ब्रह्मचारी मंगलदासकी सहायतासे विरचित संस्कृत विमलपुराणको टेहू (आगरा) निवासी व्याकरणशास्त्री पं० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिंदी वचनिकामें रामदत्ताके जीव रत्नमालाका और पूर्णचन्द्रके जीव रत्नायुधका अच्युतदेव होनेका और सिंहसेनके जीव वज्रायुधका सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र होनेका वर्णन करनेवाला आठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नौमा सर्ग

अविनाशी जगनाथ जिन, शिवदायक शिव ईश।
शिव मग दीजे मोहि प्रभु, नाऊं तुव पद शीश ॥

अथानंतर धातकी खंडके पूर्वभागमें स्थित पश्चिम विदेहक्षेत्रके गंधिल देशमें अयोध्या नामकी नगरी है। उसमें अर्हद्दास नामका राजा किसी समय राज्य करता था। उसकी रानीका नाम सुव्रता था। उन दोनोंके रत्नमाला-का जीव अच्युतस्वर्गसे चयकर वीतभय नामका तेजस्वी पुत्र पैदा हुआ। रत्नायुधका जीव उसी राजाकी दूसरी

रानी जिनदत्ताके विभीषण नामका पुत्र हुआ। उन दोनोंमें पुण्यके प्रतापसे वीतभय तो बलभद्र और विभीषण नारायण हो पृथ्वीका निष्कंटक राज्य करने लगे। आयुके अंतमें विभीषण तो नारायण होने और आरंभजनित महापापसे मरकर द्वितीय नरक गया और बलभद्र भाईके वियोगमें पहले अति दुःखित हुआ परंतु फिर विरक्त हो मुनि हो गया। उसने दुःसह तप तपे अंतमें मरकर लान्तव स्वर्गके आदित्याभ विमानमें आदित्याभ देव हुआ। प्रिय धरणींद्र! वह मैं ही हूं। मैंने अवधिज्ञानके बलसे जब अपने भाईको नरकमें दुःख भोगते जाना तो मैं उसे वहांसे निकालनेके विचारसे उस जगह गया। मैंने अपने भाईको संबोधा और दुःख देनेवाले असुरोंको ताडना दे उसे वहांसे निकालनेके अनेक उपाय किए परंतु उनसे सिवा अनेक दुःखोंके उसको कोई लाभ न मिला। इसके बाद मैं श्रीसीमंधर भगवानके समवसरणमें गया और वहां मैंने तेरे जो भव सुने उन्हें तू सुन।

इसी जंबूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें अयोध्या नामकी एक नगरी है। वहांका राजा श्रीधर्मा था और उसकी रानी सुसीमा थी। आयुके अंतमें विभीषण नरकसे निकला और उन दोनोंके सुधर्मा नामका सुत हुआ। एक दिन अनंत मुनिराजसे धर्मका उपदेश सुन वह विरक्त हो गया और तप तपकर ब्रह्मस्वर्गमें पहुंचा। स्वर्गमें जाकर वह देवांगनाओंके साथ अनेक भोग भोगने लगा और बेमालूम काल बीतने लगा। वज्रायुधका जीव सर्वार्थसिद्धिसे चयकर संजयंत नामका बलवान जितेंद्रिय पुत्र हुआ। ब्रह्मस्वर्गका देव आयुके क्षय होने पर संजयंतका छोटा भाई जयंत हुआ और मोहवश मिथ्यादृष्टि हो निदानसे मरकर धरणींद्र हुआ। वही तू है सो ठीक ही है मोहसे क्या नहीं होता?

सत्यघोषका जीव जो सातवें नरक गया था वह वहांकी जघन्यायुका भोग कर निकला और सर्प हुआ। मरकर तीसरे नरक गया। वहांसे निकल कर तिर्यंचोंकी त्रस स्थावर अनेक योनियोंमें भ्रमण करनेके बाद भरतक्षेत्रके भूतरमण वनमें ऐरावती नदीके किनारे गोशृंग तपस्वीके शंखिका नामक स्त्रीसे मृगशृंग नामका पुत्र

हुआ। पंचाग्नि तप तपनेवाले उस मृगशृंगने दिव्यतिलक नगरके अधिपति अंशुमालीको देखकर निदान किया कि जैसा यह रूपवान प्रतापी और विशाल राज्यका स्वामी है वैसा ही मैं भी इस तपस्याके फलसे होऊं। इसके बाद विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके गगनवल्लभ नामक नगरमें वज्रदंष्ट्र विद्याधरके यहां विद्युत्प्रभा रानी-से यह विद्युद्दंष्ट्र नामका पुत्र पैदा हुआ है। इस पापीने तेरे बडे भाईको मारकर दुष्कर्मोंका बंध किया है जिसके प्रभावसे असह्य अनंत दुःखोंको यह भोगेगा।

इस प्रकार यह जीव कर्मके वशीभूत हो संसारमें परिभ्रण करता फिरता पिता पुत्र भाई बंधु मा स्त्री आदि हुआ करता है इसलिए वस्तुतः देखा जाय तो न तो कोई मित्र ही है और न कोई शत्रु ही। हे धरणींद्र! अत-एव तुम इसके साथ वैर मत बांधो। इस संसारमें कौन किसका अपकारी और कौन किसका उपकारी नहीं हुआ यह सोचकर पापका बंध करनेवाला वैर मत करो। इस विद्युद्दंष्ट्रको छोड दो। इस प्रकार आदित्याभके वचन सुनकर धरणींद्र शांत हो गया सो ठीक ही है सत्य बात सुनकर सज्जनोंको तो सुख होता है और मूर्ख दुर्जन दुखी होते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे हंसको तो आनंद होता है परंतु उल्लू दुःख मानता है। इसके बाद धरणींद्रने कहा—देव! मैंने तुम्हारे प्रसादसे सद्धर्मका श्रद्धान तो किया परंतु इस नीच विद्याधरने अपनी विद्याके घमंडमें आकर यह नीच कर्म किया है इसलिए इसकी और इसके समस्त वंशकी विद्याओंको छीन लेता हूं। इसके उत्तरमें आदित्याभने कहा—भाई! तुम्हें यह भी न करना चाहिए। धरणींद्रने कहा—तब यह न सही तो इतना तो अवश्य होना चाहिए कि इसके कुकर्मके फलस्वरूप इसके वंशको विना संजयंत मुनिकी आरा-धना किए कोई भी विद्या सिद्ध न हो। इसके सिवा मेरे भाईको चतुर्दशीके दिन सिद्धपदकी प्राप्ति हुई है इसलिए विना इस तिथिकी आराधना किए भी किसीको सिद्धपद न मिले और यह चतुर्दशी पर्व मानी जाय। यदि इन को इस प्रकार भी शाप न दिया जायगा तो ये पापी विद्याधर विद्याके मदसे अन्य मुनियोंको भी कष्ट देंगे। पर्वत

विद्याधरोंके अपराधसे लज्जित है इसलिए इसका नाम भी आजसे हीमंत रक्खा गया। इसके बाद संजयंतकी पांच सौ धनुष ऊंची एक मूर्ति बनाकर वहां स्थापित की और उसकी अनेक महोत्सवोंसे प्रतिष्ठा की। इस प्रकार आदित्याभ देवके उपदेशसे उस धरणींद्रने उस विद्युद्दंष्ट्रको छोड दिया और निर्वैर हो प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चला गया। इसके बाद वह आदित्याभ भी स्वर्ग चला गया। सो ठीक ही है हितेच्छु सात्विक पुरुष परस्परका वैर छुडा ही देते हैं।

अथानंतर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें उत्तर मथुरा नामकी एक नगरी है। उसका राजा किसी समय अनंतवीर्य था। उसके मेरुमालिनी और अमितवती नामकी दो रानियां थीं। आदित्याभदेवका जीव स्वर्गसे चला और बडी रानी मेरुमालिनीके गर्भसे मेरु नामका पुत्र हुआ। धरणींद्रका जीव दूसरी रानीके मंदर नामका पुत्र हुआ और वे दोनों सूर्य चन्द्रमाके समान सुंदर दीख पडते थे।

इसप्रकार श्रीविमलनाथ भगवानकी दिव्यध्वनिसे जब उन मेरु और मंदर दोनों भाइयोंने अपने पूर्व भव सुने तो उन्हें वैराग्य हो गया। वे अपने विशाल राज्यको छोड कर विमलनाथ भगवानसे दीक्षा लेकर मुनि हो गए। अब तो वे दोनों भाई कठिनसे कठिन तप तपने लगे। शीतकालमें वे नदीके तटपर कायोत्सर्गसे रहने लगे। जब कि शीत पडनेसे वृक्ष जल कर भस्म हो जाते हैं, रोंगटे ठर्रा निकलते हैं, तालाबोंका जल जमकर पत्थरके समान हो जाता है और कमलवन मुरझा जाते हैं उस समय चौपथ (चौहटे) खडे हो कर वे ठंडी हवाके झकोरोंकी कुछ भी पर्वा न कर अंजन पर्वतके समान निश्चल खडे हो तप तपते थे एवं उनके केश दूव (दर्भ) के अंकूरोंके समान रुक्ष हो गए जान पडते थे। जिस ऋतुमें सूर्यकी तीक्ष्ण ज्वालासे पृथ्वी अग्निसे तपाये गए कडाहेके समान गरम हो जाती है, और अनेक प्रकारकी पीडा होती है उस ग्रीष्म कालमें वे पहाडके चोटी पर सूर्यके सामने मुख कर खडे हो आत्मध्यान करते थे। जिस वर्षा ऋतुमें मेघोंकी गर्जनासे दिशायें व्याप्त हो

जाती हैं, मेढकोंकी टर्रावनसे लोग डरने लगते हैं, बिजलीके गिरनेसे पेड भुंज जाते हैं उस समय ये दोनों निश्चल चित्त हो आत्मध्यान करते थे। उनके पैरों तले दूब आदि घास उग जाती थी, शरीरसे लतायें चिपट जाती थीं, और सांप बिल कर लेते थे। उन मुनिराजोंको सातों ऋद्धि प्राप्त हो गई थीं और चौथा मनःपर्ययज्ञान उदित हो गया था।

जिसप्रकार ताराओंसे वेष्टित चन्द्रमा शोभित होता है उसीप्रकार पचपन गणधरोंसे युक्त विमलनाथ भगवान भी शोभित होने लगे। वे उस समय मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका चारों संघोंसे युक्त थे और असंख्य देवोंसे सेवित थे। उन भगवानने भव्य जीवोंको हितमार्ग पर लगानेकेलिए अंग बंग कलिंग मगध विराट सिंधु कर्णाट कुंकुम कुरु मरु महाभोट भोट काश्मीर लाट गौड मेढ पाट फारस मालव आदि देशोंमें विहार किया। जिससमय उनकी आयुमें एक मास बाकी रह गया तो वे सम्मेदाचल पर पधारे और समवसरण विघट गया। आषाढ मासकी कृष्ण अष्टमीकी रात्रिके पहिले पहरमें जब कि उत्तराषाढा नक्षत्रका उदय था समुद्घात किया, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यानके बाद व्युपरतक्रियानिवृत्ति चौथे शुक्लध्यानकी आराधना कर अयोगकेवली हो सुर असुर आदिसे पूजित वे घाति अघाति सब प्रकारके कर्मोंका क्षयकर मोक्ष पधार गये। उसी दिनसे कृष्णाष्टमी इस संसारमें पूजी जाने लगी।

जिन विमलनाथ भगवानने संसार समुद्रको पार कर दिया, जो कर्मरूपी दावानलको बुझानेके लिए मेघके समान हैं, जिनके चरणकमलोंको देव देवेन्द्र तक पूजते हैं, वे हमारी रक्षा करें।

विमलनाथ भगवानरूपी सूर्य आठ कर्मरूपी अंधकारको नष्ट कर, केवलज्ञानरूपी किरणोंसे भव्य कमलोंको प्रफुल्लित कर मनोहर सम्मेदाचल पर चढ मुक्तिको प्राप्त हो गए। उन भगवानने विहार कर अपने उपदेशसे

अगणित जीवोंका कल्याण किया, मोहरूपी पर्वतको वज्रके समान भेद डाला, केवलज्ञानरूपी नत्रोंको प्राप्त किया, और शुद्ध समाधिमें लीन हुए वे हम सबकी रक्षा करें।

इसप्रकार भट्टारक श्रीरत्नभूषणाम्नायके अलंकार विद्वान् लोगोंकी चतुरतारूपी समुद्रको चन्द्रमाके समान उभयभाषाके चक्रवर्ती हर्षदेव पिता और वीरिका माताके पुत्र ब्रह्मचारीश्वर कवि कृष्णदास द्वारा अपने छोटे भाई ब्रह्मचारी मंगलदासकी सहायतासे विरचित संस्कृत विमलपुराणकी टेढ़ (आगरा) निवासी व्याकरण शास्त्री पं० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिन्दीवचनिकामें मेरु मंदिरकी दीक्षा और भगवान् विमलनाथके मोक्षकल्याणका वर्णन करनेवाला नौमा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

दशवां सर्ग

अथानंतर भगवान विमलनाथकी निर्वाणप्राप्ति जब देवोंने जानी तो वे निर्वाणोत्सव मनानेके लिए उसी समय अपने अपने वाहनोंपर चढकर इंद्रके साथ आये, मार्गमें सब लोग जय जय शब्द बोलते चलते थे। इंद्र ऐरावत हाथीपर सबसे आगे चल रहा था, देवांगनाएं मनोहारी नृत्य करती चल रही थीं और यद्यपि वे आकाशमें चल रहे थे तो भी देव, देवियों और नर्तकियोंमेंसे किसीका पैरोंका उठाना और धरना नहीं मालूम पडता था। उस समय बहुतसे देवोंके हाथमें तो भाले थे, बहुतोंके हाथमें शक्ति, धनुष, बरछी, गदा, त्रिशूल, भिंडपाल आदि अस्त्र शस्त्र थे। कल्पवासी देवोंमेंसे बहुतसे तो विमानोंमें चल रहे थे और बहुतोंने हंस गरुड मैना कोकिला आदि पक्षियोंपर सवारी कर रक्खी थी। वे देव असंख्यात थे, उनकी इंद्रने पांच पंक्ति बना दी थीं और प्रत्येक पंचवर्णके विचित्र वस्त्र पहिने थे। जब सम्मेदाचल समीप आ गया तो वे भक्तिमें आ नीचे उतर पडे। इंद्रने उसी

समय भगवान विमलनाथकी स्फटिकमयी मूर्तिका निर्माण किया और पूजा कर परोक्ष स्तुति करना प्रारंभ की। उसने दोनों हाथोंको जोडकर भक्तिमें गद्‌गद् हो कर कहा—तुम सबके रक्षक होनेसे नाथ हो, कर्मोंको जीतनेसे जिनेंद्र हो, तपके खजाने हो, दयाके समुद्र हो, मोक्ष लक्ष्मीके प्यारे पति हो, मोहका आपने ही नाश किया है, सर्वज्ञ आप ही हो, लोगोंको कल्याणकी प्राप्ति तुम्हींसे होती है, आप चिदानन्दस्वरूप हैं, भव्यरूपी कमल वनके सूर्य हो और कहांतक कहा जाय—आपकी आराधना कर ही देव देवेंद्र मनुष्य आदि सब संसार समुद्रको पार कर मोक्ष पाते हैं।

इसके बाद इंद्रने भगवानके अवशिष्ट शरीरको कपूर अगर चंदन आदि सुगंधित द्रव्योंसे दाहसंस्कार कर विनयभाव प्रगट किया और फिर अंतमें हर्षनृत्य आरंभ किया। उस समय सब देव अपनी अपनी देवियों के साथ श्रेणीबद्ध खडे हो गए और हाव भाव लय तान आदिसे मनोहर गीतोंमें भगवानका गुण गाने लगे। नाटककी समाप्ति हो जाने पर देवोंने जिनेंद्रके चरणकमलोंसे पवित्रीकृत गिरिराजको नमस्कार किया और अपने अपने स्थानपर चले गए सो ठीक ही है—सज्जनोंकी संगतिसे श्रेष्ठ फलकी ही प्राप्ति होती है। देखो! जिनेंद्र भगवानके चरणस्पर्शसे पहाड भी पूजा जाता है। जो लोग सम्मेदशिखरको मौन और ब्रह्मचर्य धारण कर भक्ति भावसे पुजा करते हैं वे अवश्य मुक्ति पाते हैं। तिर्यंच भी उस पर्वतकी सेवासे जब देव हो जाते हैं तब क्या मनुष्य उसपर तपकर मोक्ष नहीं पा सकते। यह तीर्थ सब तीर्थोंमें प्रधान है इसीलिए देवगण इसकी सेवा करते हैं, जो लोग इसकी यात्रा करते हैं उन्हें नरक और पशुगतिमें जन्म नहीं लेना पडता।

श्री १००८ पुष्पदन्त भगवानके समयमें मेघेश्वर विद्याधरने इसी पर्वत पर मेघदेवकी आराधना की थी और तब मेघ वर्षने लगे थे। वह दिन अष्टमीका था इसलिए वह भांडाष्टमी उसी दिनसे पर्व मानी जाने लगी और उसी दिन आधी रातको सुकाल दुष्काल पडनेका शकुन साधा जाने लगा।

अथातनंर एक दिन मेरु मुनिराज पर्वतकी तलहटीमें परमात्माका ध्यान करते हुए प्रतिमा योगसे विराजमान थे। आधी रातके समय विद्युन्माली नामका विद्याधर अपनी स्त्रीके साथ नाना पर्वतोंपर क्रीडा करता हुआ वहांसे निकला परंतु घंटरियोंके शब्दोंसे शोभायमान उसका विमान मुनिराजके ऊपर आकर रुक गया। यह देख विद्याधरके क्रोधका ठिकाना न रहा। वह सोचने लगा—महाविद्यासे रक्षित शत्रुओंको भयावह मेरा यह विमान अकस्मात किस पापीने रोक दिया। जिस प्रकार हंसको व्याध बांध लेता है उसी प्रकार मेरे इस विमानको किसने स्थिर कर दिया। यदि मैं किसी पापीको देख लूंगा तो फिर शस्त्रास्त्रोंसे उसे अवश्य मार ही डालूंगा। बस! इसके बाद उसने अपना धनुष हाथमें उठा लिया और बाण चढाकर ज्यों ही नीचेकी ओर फेंकने लगा, उसका हाथ पकड कर स्त्रीने कहा—नाथ! मेरी बात सुन लीजिए। आपको बिना विचारे कोई काम न करना चाहिए, जो लोग अपनी सामर्थ्य बिना देखे काम कर बैठते हैं वे मौतके मुंहमें निश्चय पडते हैं। आपका विमान जिसने रोक दिया है वह यदि बलवान् हुआ तो बडी कठिनाई पड जायगी और उसको जीतना असंभव हो जायगा और तब आपकी कीर्ति भी नष्ट हो जायगी। कीर्ति चले जानेसे जीवन भी धिक्कारने योग्य हो जायगा, मनुष्योंको ये चार बातें बिना सोचे समझे न करनी चाहिए क्योंकि विचारशीलको लक्ष्मी स्वयं वर लेती है— एक तो असमयमें गमन, दूसरे विषय संगति, तीसरे कुमित्रोंसे मित्रता और चौथे परस्त्रीपर क्रोध। इसी संबंधमें एक कथा भी है उसे हे नाथ! आप सुनिए—महाभोट देशमें कुमारपाल नामका एक सेठ रहता था, वह छप्पन करोड दीनारोंका मालिक था। उसके प्रियंगुसुंदरी स्त्री थी और चित्र विचित्र नामक दो पुत्र थे। उनमें चित्रको जूआ खेलनेका शौक पड गया वह प्रतिदिन जुआरियोंको ले ले जाकर धन देने लगा जिससे पिताको असीम कष्ट होने लगा। आखिरकार पिताने उसे कुछ धन देकर घरसे अलग कर दिया परंतु जूआ खेलनेकी उसकी आदत न गई। छोटा पुत्र विचित्रनम्र था, वह मा बापकी विनय किया करता था। एक समय वह

सिंहलद्वीपको व्यापार करनेके लिए गया। उसने वहां पहुंच कर वारह करोड दीनारोंका व्यापार किया अर्थात् इतना धन पैदा किया। इधर चित्रनें जूआमें सब धन नष्ट कर दिया और अब उसे दूसरी बात सूझी। उसने सोचा—यदि मैं सोने चांदी आदि धातुओंके वनानेवाले किसी योगीके पास जाकर गुटिका विद्या सीख आऊं तो अच्छा हो। इसके थोडे ही दिन वाद कालंद नामका एक कापालिक श्मशान भूमिमें आया। उसकी प्रशंसा सुन वहुत सी मिठाई वस्त्र भेंटमें ले यह चित्र भी उसके पास गया और नमस्कार कर पासमें जा वैठा। योगीने भी उसे भक्त समझ अति सम्मान किया सो ठीक ही है स्वार्थसिद्धिसे किसे प्रेम नहीं होता। उस दिनसे वरावर कापालिककी चित्र सेवा भक्ति करने लगा छह महीने ठहरने वाद जब वह कापालिक वहांसे जाने लगा तो चित्रने उससे प्रार्थनापूर्वक सोना वना देनेवाली विद्या मांगी उत्तरमें उस योगीने भी यह कहकर उसे वह विद्या दे दी कि—बचा! रातके समय इसको विधिपूर्वक सिद्ध करना। क्योंकि विद्या सदा गुप्त रीतिसे ही सिद्ध होती है। इसके वाद जब योगी चला गया तो चित्रने वनमें जा नाना रस मिला कर तांवे लोहे तथा हंसपाक रसका सोना वनाना प्रारंभ कर दिया। पांच वार जव उसने इस प्रकार सोना वना लिया तो उसकी तृष्णा वढ गई। उसने सोचा कि—जिस पर्वत पर अधिक लताएं हों वहां जाकर वहुत सा सोना वना लेना चाहिए फिर घरमें आनंदसे रहने लगूंगा। वस! यह सोच कर वह हाथमें धनुप वान ले आधी रातको महेंद्र पर्वतकी ओर अकेला ही चल दिया इसी समय उसका छोटा भाई विचित्र धन पैदा कर वारह वर्षके वाद दश नाकरोंके साथ अपने नागर नगरको पास जान कर रात्रिमें ही आ रहा था उसे देख चित्रने पूछा—अरे! इस अंधियारी रातमें कौन इधर आ रहा है? यह सुन विचित्रने कहा—तू ही न वता! तू कौन है? नहीं तो चक्रसे अभी खंड खंड कर डालूंगा। विचित्रकी इस कठोर वाणीसे चित्रको भी क्रोध आ गया और वैरी समझकर उसको मारनेकी ठान ली। वस! इसके वाद ही यह सोच कर कि मैं इसपर पहिले वाण चला दूं, नहीं तो यह मुझे मार डालेगा

विचित्रने अपना बाण छोड दिया इसी प्रकार चित्रने पहिले चक्र चलानेकी इच्छासे चक्र छोड दिया और इस प्रकार वे दोनों एक दूसरेके शस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीपर गिर पडे।

प्राणनाथ! रात्रिको कुछ मालूम नहीं पडता इसलिए आपको बाण नहीं छोडना चाहिए यहां तक कि रातको कहीं जाना भी न चाहिए क्योंकि जिससे दुःख मिले वह काम बुद्धिमानोंको न करना चाहिए। अकुलीन पुरुषोंके साथ बात करना विषमा गोष्ठी है, बुद्धिमान् लोग उसे कभी नहीं करते। एक दिन मानस सरोवरमें क्रीडा करते हुए हंसने हंसिनीसे कहा—प्रिये! हमारा भी कोई स्वामी है जिसके साथ आनंदसे क्रीडा की जाय? उत्तरमें हंसिनीने कहा—समस्त पक्षियोंमें तुम ही तो श्रेष्ठ हो, तुम जलमें रहते हो और मकरंद खाते हो। भला, तुम्हारा राजा कौन हो सकता है? यह सुन हंसने कहा—जब संसारमें सबका कोई न कोई राजा होता है तब हमारा ही वह क्यों न होगा? गुरु राजा धन ज्ञान और स्त्री इनके बिना मनुष्योंका जीवन निष्फल है और बिना राजाके अन्यायी न्याय मार्गपर नहीं चलते इसलिए मैं अपने सुखके लिए अपने राजाको पुछता हूं। तू बता। हंसका जब अत्याग्रह देखा तो हंसिनीने कहा—सह्य पर्वतपर वह है और रातमें चलता फिरता है। अब तो हंसिनीके निवारण करनेपर भी हंस वहां सामको ही गया और पर्वतपर चढ कर देखता ही था कि वह उल्लू भी आ पहुंचा। उल्लूने उससे उसका नाम धाम और आनेका प्रयोजन पूछा। हंसने कहा—मैं आपका सेवक और आप मेरे राजा हैं। आपकी सेवा करनेके लिए मैं यहां आया हूं। हंसकी यह बात सुन उल्लू बहुत ही खुश हुआ और उस भयंकर जंगलमें पहाडपर ले गया। एक दिन उल्लूने हंससे कहा—भाई! तू क्या ऐसी वस्तु खाता है जिससे सुंदर और कोमल दीख पडता है। हंस बोला—मैं मानस सरोवरपर रहता हूं और मकरंद खाया करता हूं। उल्लूने यह सुनकर कहा—तो भाई! तुम अपना वह स्थान मुझे भी दिखलाओ। अब तो हंस बडा प्रसन्न हुआ और उसे अपने यहां ले आया। एक दिन आधी रातके समय सब हंस सो गए थे और उल्लू-

को रातमें दीखता है इसलिए जग रहा था। इतनेमें हंसराज नामका धनुधारी उधरसे निकला और उल्लू चिल्ला उठा। हंसराजने अपनी दाईं ओर उल्लूको अशुभ समझ निशाना बांध कर तीर मारा। उसे देख उल्लू तो भाग गया, विचारा हंस मारा गया। इसलिए स्वामिन्! कहता हूं कि कुमित्रके साथ प्रेम करनेसे धन धान्य लज्जा स्नेह जीवन बुद्धि विद्या कौशल आदि सब नष्ट हो जाते हैं। उस समय रात्रि अधिक थी इसलिए विद्याधरीने परस्त्रीके क्रोधसे उत्पन्न मनको वैराग्य देनेवाली कथा कहना प्रारंभ किया।

गांधार देशमें रुद्र नामका एक वैश्य रहता था वह दानी होने पर भी अति विषयी था। उसी नगरमें श्रीपाल नामका धनाढ्य सेठ रहता था। उसकी सेठानीका नाम सुंदरी था। एक दिन रुद्र उस चकोरनयनीको देख कर कामाकुल हो गया और किसी न किसी छलसे प्रतिदिन उसके घर आने लगा। एक दिन मौका पाकर जबर्दस्ती उस पापीने सुंदरीको आलिंगन कर कहा—मेरी अभिलाषा पूरी करो। सुंदरीने क्रुद्ध हो उसे घरसे तिरस्कार कर निकाल दिया। अब तो वह बहुत कुछ लालपीला होने लगा और कहने लगा—मैं तेरा बहुत ही अनिष्ट करूंगा। सुंदरीने उसे निर्लज्ज समझ कर कहा—प्रभो! मुझे अपने पतिका डर लगता है, नहीं तो मैं तुमसे प्रसन्न हूं। इस प्रकार मीठी बातोंसे फुसला कर उसे घरके भीतर ले गई। इसी बीचमें घरके दरवाजेपर श्रीपाल आ गया। पतिके डरसे रुद्रको रत्नखचित पेटीके भीतर बंद कर ताला मार दिया। इसके बाद पतिसे बोली—स्वामिन्! अपने घर आज राजाके सेवक आकर कह गये हैं कि जो तुम्हारे सुंदर पेटी है उसे राजा चाहते हैं, शीघ्र ही भेज दें। श्रीपाल राजाकी आज्ञा सुन डरसे उस पेटीको वहां ले गया और बोला—राजन्! मेरे सिंहलद्वीपसे आई हुई यह मणिमय नयनोंकी प्यारी पेटी है। मैं आपकी भेट इसे देता हूं आप ग्रहण करें कारण देवमंदिर या राजमंदिरमें देनेसे वह पदार्थ फिर मिल जाता है। राजाने वह ले कर सिंधुस्वामीको मित्रतामें दे दी और वह भी लेकर राजाकी आज्ञासे घर चल दिया। चतुरंगसेनाके साथ जा रहा था कि मार्गमें

मांस समझ कर भेरुंड पक्षी उस पेटीको लेकर आकाशमें उड गया। राजाके सेवकोंने जब उसे छुडाना चाहा तो वह समुद्रमें गिर पडी। वहांसे जब सेवक निकालने लगे तो उसके भीतरसे रुद्रने कहा—"संसारमें मुझ रुद्रसे भिन्न जो स्त्रियोंके जालमें नहीं फंसे ऐसे लोग ही कृती, ज्योतिषी और पंडित हैं" पेटीके भीतरसे आवज आती सुन सेवक लोग डर गए और राजाके सामने जा कर बोले—पेटी तो बोलती है। राजाके पूछनेपर सेवकोंने उस अर्थवाली गाथा कह सुनायी। राजाने कहा—अरे! उसमें कोई विद्वान् पुरुष बैठा है, जाओ उसे समुद्रमेंसे शीघ्र निकाल लाओ। राजाकी आज्ञा सुन सेवक ज्यों ही उस संदूकको लेनेके लिए गए त्यों ही एक मच्छने उसे निगल लिया और विचारा रुद्र व्यर्थ ही मारा गया। इसलिए हे स्वामिन् जो लोग परस्त्रियों के साथ प्रेम करते हैं वे रुद्रकी भांति ही नष्ट हो जाते हैं। विद्वानोंको भला बुरा विचार कर ही कार्य करना चाहिए।

स्त्रीकी यह बात सुन विद्युन्मालीने कहा—हे प्रिये! तेरा कहना ठीक है परंतु औरतोंकी बातें मूढ लोग ही माना करते हैं। उत्तरमें स्त्रीने कहा—हितकर बात स्त्रीकी अवश्य माननी चाहिए और अहितकर विद्वानोंकी भी नहीं, परंतु विद्युन्मालीने उसके वचनोंका तिरस्कार कर बाण सब दिशाओंमें छोड ही दिए उनसे अगणित वन्य जीव मर गये परंतु मेरुके समान अचल मुनिराज मेरुका ध्यान न डिगा तब तो उस दुष्ट विद्याधरने छत्तीस मुंह हाथवाली विद्याका स्मरण किया और मुनिराज मेरुको उठाकर नाना तरहकी गाली देता और विद्यासे कपाता आकाशमें ले चलने लगा इतनेमें ज्योतिषचक्रमें स्थित वैडूर्यदेवका आसन कंपायमान हुआ। अवधिज्ञानसे मेरु मुनिको विघ्न आया जान वह शीघ्र ही हाथमें खड्ग लेकर आया। बादलके समान गर्जकर असह्य दुर्वचनोंको कहते उसे देख विद्युन्माली डर गया और मेरुमुनिको छोड कर जाने लगा। दो तीन पैर ही वह आगे बढने पाया होगा कि देवने उसे सांकलसे बांध लिया। उसी समय मेरुमुनिको लोक अलोकका स्पष्ट

एक साथ ज्ञान करानेवाले केवलज्ञानकी उत्पत्ति हो गई और चारों निकायके देव केवलज्ञानकी पूजा करनेके लिए उत्सवसहित आए। इंद्रकी आज्ञासे तीन कटनीयुक्त गंधकुटी बनायी और मनुष्य देव आदि सब वंदना कर गद्य पद्यमय स्तुति करने लगे। इसके बाद वे सब उनके चरणकमलोंको नमस्कार कर सब तरफ बैठ गये सो ऐसे मालूम पडने लगे मानो क्षीरसमुद्रमें हंस ही बैठे हों। उसी समय मेरुके समान अपनेमें निश्चलता प्राप्त करनेके लिए इंद्रने ध्यानकी सिद्धिमें कारणभूत एकसौ आठ दानोंकी मणिमाला बनायी मालाके अंतमें मेरुमुनिके नामकी गांठ दी और देव विद्याधरोंके साथ उसे गलेमें पहिन लिया। अथानंतर इक्ष्वाकुवंशीय पल्लवपुरका स्वामी उग्रसेन नामका राजा वहां आया था उसने मेरुभगवानसे धर्मका उपदेश सुन तपमें विघ्न आनेका कारण पूछा और कहा–कि भगवन ! इस विद्युन्मालीने किस वैरके कारण आपके साथ ऐसा वर्ताव किया और इस विद्याधरको ही इस देवने क्यों बांधा उत्तरमें मुनिराजने कहा–

धातुकीखंडके ऐरावत क्षेत्रमें किष्किंधा नामका एक नगर है। उसका राजा किसी समय सिंहरथ था। उसी नगरमें माधव नामका एक सेठ रहता था, उसके सुंदर बुद्धिमान् सात पुत्र पैदा हुए। एक दिन वह सेठ वर्षा ऋतुमें कहीं जा रहा था, शुभ भाग्योदयसे उसे रत्नोंका भरा एक पात्र मिल गया। रात्रिको उसने लडकोंके सामने ही पृथ्वीमें गाढ दिया और आनंदसे रहने लगा। एक दिन सबसे बडे लडके अरिंजयने मनमे यह विचार कर कि पिताजीके मरने पर इसके सात भाग होंगे, उस धनको दूसरी जगह गाड दिया सो ठीक ही है दुर्मति देनेवाले लोभको धिक्कार हो। कुछ दिन बाद माधव सेठने उस धनको देखा तो वह उसे न पाकर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पडा और मरकर खजाने पर सांप हो गया। एक दिन अरिञ्जय उस धनको लेनेके लिए गया और धीरे धीरे पृथ्वीको खोदने लगा इतनेमें उस सांपने आकर उसे काट लिया, अरिञ्जयने भी क्रोधमें आकर सांपको मार डाला और इसप्रकार वे दोनों मर गये।

इसी भरतक्षेत्रकी उत्तर मथुरा नगरीमें वे दोनों एक बनिएके यहां भद्र और हर नामके पुत्र हुए। वे दोनों मूर्ख कुरूप दुष्ट और निर्लज्ज थे। एक समय मगध देशमें व्यापारके लिए वे दोनों गये थे। उनमेंसे सांपके जीव भद्रने मनमें यह विचार कर कि इस हरको मार डालनेसे मैं अकेला ही धनका स्वामी हो जाऊंगा आधी रातके समय धोखेसे एक रास्तागीर (पथिक) को मार डाला और वहांसे चल दिया। रात्रिके पिछले पहरमें जब हरकी आंख खुली तो पासमें मरे हुए आदमीको देखकर उसने सोचा—जरूर मेरे भाईने ही मेरे धोखेमें इस पथिकको मार डाला है। यदि मैं यहां रह जाऊंगा तो मेरी निंदा होगी क्योंकि दुष्टकी संगतिसे बदनामी, बंधन, ताडन और मरण सुलभतासे प्राप्त हो जाते हैं। इसप्रकार विचार कर चिंताकुल भूखा हर भी चल दिया और जब अपने गांवके समीप पहुंचा तो सोचने लगा कि—मैं किस धर्म अधर्मको जाननेवाले पुरुषको अपना दुःख निवेदन करूं। बस, वह मेरे पास आया और सब वृत्तांत सुना कर चुप हो गया। मैंने उस पापी भद्रको बुलाया और दुःसह दंड दे नगरसे निकलवा दिया। लज्जित हो भद्रने मुनिके पास जाकर दीक्षा ले ली। आयुके अंतमें मुझ पर क्रोध रखकर यह मरा और विद्याधर हुआ। पूर्वमें जो मैंने इसे दंड दिया था उससे इसने मुझसे तीव्र वैर बांध लिया और मेरे तपमें विघ्न किया इसलिए हे राजन्! किसीके साथ वैर न करना चाहिए। आदित्याभके भवमें विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रको मैंने धरणींद्रसे छुडाया था वह विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रीपुर नगरके राजा भूपालकी स्त्री ललांगीसे उत्पन्न रुर्वक्षीपर मोहित हो गया और जब याचना करनेपर भी भूपालने उसे रुर्वक्षी न दी तो वह उसके साथ युद्ध कर बैठा। युद्धमें विद्युद्दंष्ट्रकी हार हुई इसलिए अपमानसे दग्ध हो वह कुतप तपने लगा। आयुके अंतमें मरकर ज्योतिषी देव हुआ और जो मैंने पूर्व जन्ममें इसका उपकार किया था उसको याद कर इसने मेरे विघ्नको शांत किया है।

इसप्रकार केवली भगवानसे अपना संबंध सुनकर विद्याधर और राजा उग्रसेन दोनों दीक्षित हो मुनि हो

गए। ज्योतिषी देव भी उनकी स्तुति कर संतुष्टचित्त हो अपने विमानमें चला गया सो ठीक ही है सज्जन उपकारको कभी नहीं भुलते। श्रेष्ठ पुरुष पीडित होनपर भी विकारको प्राप्त नहीं होते जैसे कि ईख पेली जाने पर भी मीठे रसको ही देती है। संसारमें चंदनके समान श्रेष्ठ पुरुष तो बिरले हैं और आकवृक्षके समान बहुत। जैसे कि हंस तो कहीं दीख भी नहीं पडते परन्तु उल्लू अगणित मिलते हैं। गणधर मेरुने एक हजार वर्ष तक नाना देशोंमें विहार किया और आयुके अंतमें मोक्षसुख पाया।

सम्मेदशिखर पर्वतके समीप पद्मकंवल नामका एक नगर है। वहां यशोधर नामका सेठ रहता था और उसकी सेठानीका नाम यशस्विनी था। एक दिन वह सांपने काट खाई। मरी समझ कर उसे लोग जलानेके लिए भूतारण्य नामक श्मशानमें ले गये परन्तु वह मंदर मुनिके अंगको स्पर्शकर आनेवाली वायुसे चंगी हो जीवित हो गई। सेठानीको जीवित देख लोग मनमें बहुत ही डरे और सोचने लगे कि यह भूतकी लीला है। लोगोंको भीत देख मांसभक्षी असंख्य जंतुओंने उन्हें आ घेरा। यह देख वे सबके सब मंदर मुनिके चरणोंके समीप जा इकट्ठे हुए। वनदेवीने मुनिकी भक्तिवश उस बनके मजबूत तीन परकोटे रच दिये और प्रातःकाल उनके मुखिया सेठसे यह कह दिया कि मुनिराज मंदरको धन्य है जिनके प्रभावसे सेठानीका विष दूर हो गया है, यह सुन सेठ सेठानी विरक्त हो दीक्षित हो गये। मंदर मुनि भी ध्यानसे कर्मोंका नाश कर देवताओंसे पूज्य सर्वज्ञ हो मुक्ति पधार गए। उग्रसेन मुनि तीव्र तप तपकर सर्वार्थसिद्धि पहुंचे। विद्याधर विद्युन्माली यथाशक्ति तप तपकर पांचवें स्वर्गमें ललित नामका देव हुआ। सो ठीक ही है—जो लोग तप तपते हैं उनको अद्भुत लक्ष्मी प्राप्त होती है, उनके स्वर्ग तो घरमें ही है और कामधेनु किंकरी है।

श्री विमलनाथ भगवानके पचपन तो गणधर थे, ग्यारहसो पूर्वधारी मुनि थे, अडतीस हजार पांचसो (जिन्होंने इनसे ही दीक्षा ली थी) शिष्य थे, अडतालीस सौ अवधिज्ञानी थे, पांच हजार पांचसो केवली थे,

छत्तीससौ वादी मुनि थे, अडसठ हजार सर्वसंयमी मुनि थे, एक लाख तीन हजार पद्मा आदि आर्यिकायें थीं, दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकाएं, नौ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, पांच हजार पांचसौ मनःपर्ययज्ञानी और असंख्याते देव भक्त थे। इन धर्मनिष्ठोंसे युक्त विमलनाथ भगवान अति शोभित होते थे।

विमलनाथ भगवान बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी हैं, कल्याणके करनेवाले हैं, कर्मरूपी कीचडको नष्ट करनेके लिए सूर्य हैं और त्रिजगतके नाथ हैं उनको बार बार हमारा नमस्कार हो।

जो पद्मसेन नामक राजा हुए, फिर बारहवें स्वर्गके इंद्र सहस्रारेंद्र हुए और अंतमें केवलज्ञानके धारक विमलनाथ तीर्थंकर हो मोक्ष प्राप्त की वे परम शुद्ध भगवान हमारी रक्षा करें। जिस प्रकार कमलोंको सूर्य प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार जो भव्योंको आनंद देनेवाले हैं, मोहरूपी हाथीको भेदनेके लिए सिंह हैं, इंद्र चक्रवर्ती आदिको जो चकोरको चंद्रमाके समान आह्लादक हैं हे, भव्य पुरुषो! उन विमलनाथकी कल्याण प्राप्त करनेके लिए भक्ति सेवा करो।

मूल ग्रंथकर्ताकी प्रशस्ति

विख्याते जगतीतले त्रिभुवनस्वामिस्तुतेऽभून्महान् । काष्ठासंघसुनामनि प्रभुयतौ विद्यागणे सूरिराट् ।
सारंगार्णवपारगो बहुयशाः श्रीरामसेनो जिनध्यानार्णोवितितिप्रधूतवृजिनो भानुस्तमोराशिषु ॥
तत्क्रमेण गणभूधरभानुः सोमकीर्तिरिव शीतमयूखः । संबभूव जनताशिखिशुक्षु नागनाथदयिताकृततेजाः ॥
तत्पदे विजयसेनभदतो बोधिनाखिलजनः कमनीयः । कीर्तिकांतिकमलाजलराशिः संबभूव विजयी कुमतीनां ॥
तत्पट्टे सूरिराजः सकलगुणनिधिः श्रीयशःकीर्तिदेवस्तत्पादांभोजपद्मत्सकलशशिमुखो वादिनाग्रेंद्रसिंहः ॥
संजज्ञे प्रांतसेनोदय इति वचसां विस्तरे स प्रवीणः । तत्पद्मार्जालिसक्तस्त्रिभुवनमहिमा तन्मुखमानकीर्तिः ॥
राजते रजनिनाथयशांको तत्पदोदयनगाहिमदीप्तिः । तर्कनाटककुलागमदक्षो रत्नभूषणमहाकविराजः ॥
श्रीमल्लोहाकरेभूत्परमपुरवरे हर्षनामा वरीयान् । तत्पत्नी साधुशीला गुणगणसदन वीरिकाख्येव साध्वी ॥

पुत्रः श्रीकृष्णदासो रतिप इव तयोर्ब्रह्मचारीश्वरश्च । सत्कीर्तौ राजते वै वृषभजिनपदांभोजषट्पदसमानः ॥
मंगलैर्मकरकेतुदीप्तिभिर्निर्वाणिभिः सह मया कृतोऽयकं । ग्रंथ एव विदुषां सुखप्रदः शोधयंतु विबुधाः खलेतराः ॥
गूर्जरे जनपदे पुरे कृतः कलावलयमिव एकवत्सरात् । वर्धमानयशसा मया पुरोः पंकजाहितसुचेतसा ध्रुवं ॥
मेरुभूधरपतिः खतारकाः संति सागरधरो नभोमणिः । तावदेष विदुषां मनोंतरेऽलंकृतः सततमेव भातु मे ॥
खत्रिसंख्यित(?)शतान्वितोऽधिको वेदपद्मामि कव्यराजिभि । पंडितैर्मतिविकारवर्जितैः संलिखाप्य पठनाय दीयतां
वेदर्षिषट्चंद्रमितेऽथ वर्षे पक्षेऽसिते मासि नभस्यलंभे । एकादशीशुक्रमृगर्क्षयोगे ग्रंथ्यानिते निर्मित एष एव ॥
इति श्रीवृहद्विमलनाथपुराणे भ० श्रीरत्नभूषणन्यायालंकारविद्वज्जनचातुरीसमुद्रलावुभयभाषाचकवर्तिद्वयचोरिकातनूजब्रह्मचारीश्वरकृष्ण-
जिष्णुविरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे निर्वाणनाटकमेरुध्यानोपसर्गमेरुमंदिरनिर्वाणनिरूपणो नाम दशः सर्गः ॥ १० ॥

पृथ्वीमें प्रसिद्ध त्रिजगतसे पूज्य काष्ठासंघमें ज्ञान समुद्रके पारको पहुंचे हुये रामसेन नामके आचार्य हुये जिनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी, जिनने जिनेंद्र भगवानके ध्यानरूपी समुद्रकी लहरोंसे समस्त पापोंको धो दिया था और सूर्यके समान अज्ञानांधकारको नष्ट कर दिया था। उनकी आम्नायमें संघरूपी उदयाचलके सूर्य, चंद्रमाके समान सौम्य कीर्तिके नायक, सोमसेन नामक आचार्य हुये। उनके पदपर विजयसेन आचार्य हुये, जिन्होंने समस्त प्राणियोंको ज्ञान दिया, जो सबको प्रिय, कुमतिके विजेता, कीर्ति, कांति और लक्ष्मीके समुद्र थे। उनके पदपर समस्त गुणोंके समुद्र आचार्य श्रीयशःकीर्ति हुये। उनके पदपर वादीरूपी हाथियोंकेलिये सिंहस्वरूप, पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रसन्नमुख, अपने गुरु यशःकीर्तिके चरणोंके लिये भ्रमर रूप और उपदेश देनेमें प्रवीण उदयसेन नामक आचार्य हुये। उनके पदपर जगत्प्रसिद्ध भुवनकीर्ति हुये जो अपने गुरुके चरणोंकी भक्तिमें सदा तत्पर थे। उनके पदरूपी उदयाचलपर सूर्यके समान प्रतापी, चन्द्रमाके समान यशस्वी, तर्क नाटक और आगममें दक्ष, महाकवि रत्नभूषण हुये। (ग्रंथकर्ता इनके ही शिष्य थे जैसा कि सर्गके अंतमें दिये हुये परिचयसे ज्ञात होता है।)

लोहाकर नगरमें हर्ष नामक एक श्रेष्ठ गृहस्थ थे। उनके गुणवती साध्वी सुशीला वीरिका नामकी पत्नी थी। उनके कामदेवके समान मनोहर श्रीकृष्णदास नामका पुत्र हुआ, जो ब्रह्मचारीश्वर था, श्रेष्ठ कीर्तिवाला था और वृषभ जिनेंद्रके चरणकमलोंका भ्रमरके समान सेवक था। उसी सुझने कामदेवके समान दीप्तिवाले श्रीमान् मंगलदासकी सहायतासे यह विद्वानोंको सुख प्रदान करनेवाला ग्रंथ बनाया है। सज्जन विद्वान् इसको जहां अशुद्ध समझें शोध दें। इस ग्रंथको मैंने आदिनाथ भगवानके चरणोंमें मन लगाकर गुजरात देशके कल्पवल्ली नगरमें बनाया है और एक वर्ष बनानेमें लगा है।

यह ग्रंथ, जबतक इस संसारमें सुमेरु पर्वत है, आकाश व्याप्त है, तारे प्रकाशमान हैं, समुद्र प्रवाहित है, और सूर्य देदीप्यमान है तबतक विद्वानोंके हृदयमें सुशोभित रहे।

इस ग्रंथमें कुल दो हजार तीन सौ चौसठ श्लोक हैं। निष्पक्ष बुद्धिमानोंको चाहिये कि वे लिखाकर इसको पठनार्थ प्रदान करें।

इस ग्रंथका निर्माण संवत् १६७४ में श्रावण मासकी कृष्ण पक्ष एकादशी शुक्रवारको मृग नक्षत्र और ध्रुव ताराके उदय रहनेपर हुआ है।

इसप्रकार भट्टारक श्री रत्नभूषणाम्नायके अलंकार, विद्वान् लोगोंको चतुरतारूपी समुद्रको चंद्रमाके समान, उभयभाषाके चक्रवर्ती, हर्षदेव पिता और वीरिका माताके पुत्र ब्रह्मचारीश्वर कवि कृष्णजिष्णु द्वारा अपने छोटे भाई ब्रह्मचारी मंगलदासकी सहायतासे विरचित संस्कृत विमलपुराणकी टेढ़ (आगरा) निवासी व्याकरणशास्त्री पं० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थकृत हिंदी बचनिकामें भगवान् विमलनाथका निर्वाणकल्याणक मेरु गणधरका ध्यान और उपसर्ग एवं मेरु और मंदर गणधरोंके निर्वाण प्राप्त होनेका वर्णन करनेवाला दशवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ १० ॥

अनुवादकका परिचय

जिला आगरा बीच है, टेहू ग्राम प्रसिद्ध । जिनधर्मी श्रावक तहां, जौंहरीलाल समृद्ध ॥ १ ॥
आज्ञाकारी चार सुत, उनके अतिगुणवान । ज्ञाता आगमके, प्रथम, प्यारेलाल सुजान ॥ २ ॥
छोटेलाल द्वितीय हैं, सरलचित्त विद्वान । चौथे ज्वालप्रसाद लघु, जिनसेवी गुणखान ॥ ३ ॥
वैद्यकज्ञानप्रवीण बहु, सधननिधनसमदृष्ट । निःशुल्करोगहारी तृतीय, बंशीधर अतिशिष्ट ॥ ४ ॥
पुत्र चार उनके गुणी, संस्कृतसुज्ञ सुभाल । ज्यायान मक्खनलाल हैं, द्वितीय पुत्र श्रीलाल ॥ ५ ॥
अनुवादक इस ग्रंथके, काव्यतीर्थ उपनाम । सद्व्याकरण जिनेंद्रके, ज्ञाता अति अभिराम ॥ ६ ॥
सुभाषितरत्नसंदोहके, हिंदी भाषाकार । लेखक संस्कृतप्रवेशिनी, पार्श्वचरित अविकार ॥ ७ ॥
गुणि जिनदत्तचरित्रके, अनुवादक जिनभक्त । जैनसिद्धांतप्रकाशिनी, संस्थाके हितरक्त ॥ ८ ॥
चिरंजीव जयचन्द्र है, तृतीय भ्रात धीमान । संस्कृतशास्त्रप्रवीण बहु सदा पठत धरिध्यान ॥ ९ ॥
अजितवीर्य सबमें लघू, विद्यार्थी गुणवित्त । गुरु आज्ञा पालन चतुर, ज्ञानार्जनबहुचित्त ॥ १० ॥
विमलनाथ भगवानका, पावन परम पुराण । पृथ्वीपर तौलौं दिपै, जौ लौं चंद्र रु भान ॥ ११ ॥

सोरठा ।

मैं हू अति मतिमंद, ग्रंथ अर्थकी भूल जो । रह गई होय अमद, शुद्ध करें बहु श्रुतसदा ॥ १२ ॥

समाप्तश्चायं ग्रंथः

श्रीविमलपुराण भाषा

(समाप्त)